

जाति व्यवस्था



राजकमल प्रकाशन

दिल्ली ६

पटना ६

जाति

संश्लेषण

तर्मदेश्वर प्रसाद

प्रोफेसर एव अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग

पटना विश्वविद्यालय

प्रकाशक
राजवमल प्रकाशन प्रा० लि०, नित्सी ६

© डॉ० नमदेस्वर प्रसाद

मूल्य रु० ७५०

प्रथम संस्करण १९६५

मुद्रक

एवरेस्ट प्रेस ४ धर्मलियान रोड

नित्सी ६

पितामह
धनेश्वर प्रसाद
की पुण्य स्मृति मे

प्राक्कथन

भारतीय जाति-व्यवस्था पर लिखना आसान नहीं रहा है और इसके समस्त पक्षों का विवेचन तो लगभग असम्भव है। मुझे नहीं पता कि मैंने इस विषय पर उपलब्ध विद्यालयात्मक साहित्य में कुछ भी नया जोड़ा है। मैं सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि मैंने जाति व्यवस्था के सन्दर्भ में सामाजिक इतिहास की अन्तर्दृष्टि का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। जहाँ तक मरने जानकारी है, जाति-सम्बन्धी अनुसंधान का प्रवृत्ति पर पिछले पिछलेतर या सौ वर्षों में, शायद ही कोई 'गोघ-नाय' हुआ है। आरम्भिक समाज-वैज्ञानिक अधिकांश जाति व्यवस्था के कारण, उत्पत्ति और विकास का पता लगाने में व्यस्त रहे। आज की भाषा में उनके प्रयास को 'ऐतिहासिक दृष्टि' की संज्ञा दी जाती है। उनकी व्याख्याएँ और निष्कर्ष मुख्यतः ऐतिहासिक स्रोतों या प्रमाणात् लिये गए छिटपुट नमूनों पर आधारित रहे हैं जिनमें किसी प्रकार का अनुसंधान या तार्किक नहीं होता था। इतिहास के परिप्रेष्य की भी बड़ा चिन्तन उपस्था की जाती रही है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उनकी उपलब्धियाँ नगण्य हैं। वस्तुतः जाति-शास्त्र को उन्की देन उच्च काटि की थी। जाति-सम्बन्धी अध्ययन की नवीनतम प्रवृत्ति जातियाँ में सम्बन्ध तनाव और सामंजस्य—एक राज्य में सामाजिक प्राक्कथन की श्रृंखला है। यह पद्धति अभी अपनी अविश्लेषित अवस्था में है। जातिगत तनाव की गहराई एक श्रेय श्रेयों पर प्रकाश डालने वाली कोई भी अध्ययन-सामग्री अभी तक मेरे दृष्टि में नहीं आई। मेरे खयाल में अनुसंधान की पद्धति और उसके उपकरणों पर गम्भीरता से साधने की अत्यधिक आवश्यकता है। एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में जाति के समुचित विश्लेषण के लिए प्राचीन और नवीन दोनों पद्धतियों के समीक्षित रूपों का समन्वय आवश्यक है ताकि हमें दोनों का सन्तुलन उपलब्ध हो सके।

आज जाति केवल 'एकेडेमिक' अनुसंधान का विषय नहीं है। यह प्रशासन, राजनीति और जन-सामाज्य के लिए एक समस्या बन गई है। चाहे वह किसी राजनीतिक पार्टी का कार्यालय हो, या किसी विश्वविद्यालय का प्राण प्रथम सामुदायिक योजना का प्राम, देर सचेर जाति या जातिवाद पर अन्वेषण

बहुत चल पड़ती है। इससे कोई नतीजा नहीं निकलता। अतः मैं निहाय निरुपायना ही हाथ लगती है। बिनोबा भावे ने एक बार कहा था कि जातिवा जनतंत्र की जीवनो शक्ति का क्षय कर रहा है। १९५७ के आम चुनाव ९ टिप्पणी करते हुए जयप्रकाश नारायण ने कहा था कि जाति ही एक पार्टी का विचारधारा है जिसने यह चुनाव लड़ा। किसी राजनीतिक विचारधारा २ आर्थिक कार्यक्रम का सम्बन्ध इन चुनावों से नहीं था। इसलिए जाति के बा और बसे का और अंधिर पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है।

अतः मैं अपने उन सभी मित्रों सहयोगियों और छात्रों के प्रति कृतज्ञता पापित करना चाहता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक में सच्ची निलचस्पी की कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर आर० एम० मकाइवर के साथ १९४८ ४ में बिताय गए उन सुखद दिनों की याद अभी भी ताजा है जब उनके सा जाति-व्यवस्था की आधारभूत समस्याओं पर विचार विनिमय करने का अवसर प्राप्त हुआ था। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के ही प्रोफेसर वनहाड जम्ट और मरियन डब्ल्यू० स्मिथ के विचारों से भी काफी लाभ हुआ है। मैं इन सभी विद्वानों के प्रति आभारी हूँ।

समाजशास्त्र विभाग,
पटना विश्वविद्यालय पटना

—नर्मदेश्वर प्रसा

विषय-सूची

प्राक्कथन

आमुख—१

जाति-व्यवस्था का वर्तमान रूप	३
जाति-व्यवस्था का उदभव और विकास	१५
जाति व्यवस्था का इतिहास	५२
हिंदू धर्म और दशत	८८
मुघार आन्दोलन	१८
भारतीय अर्थ-व्यवस्था का विश्लेषण	१०६
जाति-व्यवस्था पर नागरीकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव	११४
जातिमूलक स्थिर धारणाएँ	१३५
जातीय पूर्वाग्रह	१५८
जाति-व्यवस्था तथा अर्थ धार्मिक समुदाय	१८१
उपसंहार	२०४
संदर्भ	२२१

आमुख

भारत के ८४१ प्रतिशत निवासी हिंदू हैं।^१ 'हिन्दुओं का सामाजिक संघटन, अर्थात् जाति-व्यवस्था, अपने ढंग का एक ही है। इसकी एक आरंभिक जनक प्राचीन परम्परा है, जिसके कारण हमें मूलभूत सिद्धान्त अत्यन्त पवित्र और अपरिवर्तनीय माने जाते हैं। पर इन सिद्धान्तों को आज जनतंत्र और स्वतंत्रता सम्बन्धी आधुनिक राजनीतिक मान्यताएँ गहरी घुनीती दे रही हैं और किसी तरह, भारतीय जीवन में प्रवेश भी कर रही हैं। फिर भी यह सोचने की बात है कि भारत के समस्त सामाजिक जीवन पर हिन्दुओं की जाति-व्यवस्था का गहरा असर है। यहाँ समूह परिवार की प्रणाली है, यान विवाह की प्रथा है, छूत अछूत का सवाल है, और समाज के क्रुद्ध लोगों को इतना हीन बनाकर रखा गया है कि उनको देखना भी पाप समझा जाता है उनकी छाया से भी परहेज किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में भला जनतंत्र और स्वाधीनता की भावनाएँ किस प्रकार पनप सकती हैं? जनतंत्र महज एक राजनीतिक नारा नहीं, इस सामाजिक दंगल भी यतना है।

भारत के नए संविधान में लिखा है (१) "हम भारत के लोग, भारत की एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न सौवर्ण-शासक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उस समस्त नागरिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जाय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना का स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सर्वम व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करनवाली बहुता बढान के लिए हृदय-सकल्य होकर अपनी इस संविधान-सभा में आज इस संविधान का अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

(२) "राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवर्ग, जाति, लिंग, जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।"

(३) 'केवल धर्म, मूलवर्ग, जाति लिंग जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक—(क) दूनानों सावजनिक मोजनाजयों,

होटला तथा सावजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश के अथवा (ख) पूण या आंगिक रूप में राज्य निर्धिष्ट स पोषित अथवा साधारण जनता के उपयोग के लिए समर्पित बुद्धा तालाबा, स्नान घाटा, सडको तथा सावजनिक समागम स्थानों के उपयोग के बारे में किसी भी नियोग्यता, दायित्व, निवन्धा अथवा क्षति के अधीन न होगा।^{१४}

(४) 'राज्याधीन नौकरिया या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सब नागरिका के लिए अवसर की समता होगी।'^{१५}

(५) 'अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। अस्पृश्यता से उपजी किसी नियोग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनाय होगा।'^{१६}

अब समस्या है कि क्या जाति-व्यवस्था और जनतंत्र का संयोग हो सकता है? क्या प्रजातान्त्रिक राज्य और जाति-आधारित समाज का सह-अस्तित्व सम्भव है? प्रजातंत्र का तात्पर्य है कि राज्य सम्पूर्ण समुदाय की संपत्ति गति का वास्तविक अर्थ में, न कि केवल प्रतीक रूप में प्रतिनिधित्व करे। इस गणतन्त्र प्रणाली का चरम लक्ष्य व्यष्टि होना है और इसकी बुनियादी गत होती है उसके लिए समान अधिकार समान सुविधा और समान अवसर। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-विकास का उचित अवसर मिलना चाहिए अथवा, जसा कि एरिक फ्रॉम ने कहा है प्रत्येक व्यक्ति का निर्माणशील बनने का स्वाधानता हानी चाहिए।^{१७} या तो जनतान्त्रिक आत्मस और व्यवहार में विषमता हो सकती है परंतु जब हम जनतंत्र और जाति-व्यवस्था पर विचार करते हैं तब हमारे समान मूलतः परस्पर विरोधी दो समस्याएँ और दो प्रकार के आत्मस हात हैं। डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने लिखा है हिन्दुओं की समाज व्यवस्था का सांख्यिक और सामाजिक उपयोगिता और सामाजिक न्याय की दृष्टि से दृश्य पराधा था। आप देखें कि यह ऐसा धर्म है जिसका उद्देश्य स्वाधीनता समता और भाईचारे की स्थापना करना नहीं। यह धर्म आत्मस का अन्त मानव मानना है और हिन्दू-समाज के अर्थ लागे को उनकी पूजा करा या उपस्य देना है।^{१८} जनतंत्र का जाति व्यवस्था से यही मौलिक विरोध है। इसलिए हम समझते हैं कि भारतीय गणतंत्र की उपयुक्त धाराएँ महान् सामाजिक परिवर्तन की सूचक हैं।

स्वतंत्रता प्राप्त करा के बाद से भारत में औद्योगिकरण की बड़ी-बड़ी योजनाएँ कार्यान्वित करने का प्रयत्न हो रहा है। हम चाहते हैं कि भारत आधुनिक परिभाषित राष्ट्र का, और इसलिए आधुनिक विकास तथा औद्योगी

करण के ये सब आयाजन ह । अब जो प्रश्न उठने वाला है या एक तरह से उठ नी चुका है, वह यह कि सन्तुलन कैसे प्राप्त किया जाए । विज्ञान और क्लिप के क्षेत्र म भारत तीव्र गति मे बढ रहा है, परन्तु तिन सामाजिक सस्थाधा के माध्यम स आधुनिक यात्रिक सुविधाया का उपयोग और नियन्त्रण होगा, वे सत्र शतादिया पुरानी हा गई हैं । ऐस ही प्रसंग म अमरीकी संस्कृति का विश्लेषण करते हुए श्री वान्म न बडे मार्को की बात कही है

पुरातन संस्कृति का पतन इसलिये हुआ कि यूनानी और रोमन समाज क आदर्शों और उनका सस्थाधा का अध्यान् उनके आदर्शवादी द्रशन और साम्राज्यवादी राजनीति का इतना अधिक विकास हुआ कि वे अपने जमान के सीमित शिल्प विज्ञान को, विशेषत उस समय की परिवहन-व्यवस्था को, पीछे छोडकर बढ गए । ठीक इसके विपरीत, आज की मशीन हमारे सामाजिक चिन्तन और सामाजिक सस्थाधा से बहुत आग बढ गई है जिसके कारण हमारी संस्कृति बुरी तरह सत्रटापन हा रही - ।^{१६} यहा द्विधा 'यूनाधिक' माना म भारत के सामन भी ह ।

दूसरी मुख्य बात है कि क्या व्यक्ति के अधिकारो का संरक्षण कानून के जरिए सम्भव है ? क्या संविधान की सभी धाराएँ, सिद्धान्त और व्यवहार दाना रूप म समाज द्वारा अंगीकृत हा सकेंगी ? अनुभव बताता है कि व्यक्ति के अधिकारो का संरक्षण कानून क द्वारा नहीं, सामाजिक विवेक क द्वारा होता है । क्याकि व्यक्ति का ता कानून दण्डित कर सकना है, परन्तु पूरी समष्टि का नला किस प्रकार दण्ड दिया जा सकता है ? 'प्रत्येक वस्तु ब्रह्म है'—यह हिंदू-दशन कवल बौद्धिक धनिधारणा है, यह कभी सामाजिक दशन नहीं बन सका । हिंदू दारानिका के एक हाथ म उनका दशन रहा है और दूसर मे मनु और दाहिने हाथ को कभी यह न पता चना कि बाएँ मे क्या है ।^{१७} तात्पर्य यह है कि कवल कानून बना देने म हा काम नहीं चलता । देखा गया है कि बसे कानून कभी अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर पाते । उदाहरण के लिए, अदालती शादी कानून (द मिजिल मग्ज एक्ट), जाति अयोग्यता उन्मूलन कानून (द रिमूवल ऑफ कास्ट डिस् एविलिटीज एक्ट), विधवा-विवाह कानून (द विधो रिमेरेज एक्ट १८५६), हिंदू धार्मिक दान कानून (द हिंदू रिजिजियस एण्डाउमट एक्ट), गारदा कानून (द गारदा एक्ट) बाल विवाह नियन्त्रण सग्यधी कानून (द चाइल्ड मेरेज एक्ट, १९२६) और अनेक कानून बन, परन्तु उनसे कोई ठोस सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सका । फिर भी इन कानूना का इतना महत्त्व भवदय है कि इनक द्वारा जाति-व्यवस्था क

मूलभूत सिद्धांतों की कुनौती मिली है और उन पर आघात भी पट्टा है।^{११} (सन् १९२७ ई० में अखिल भारतीय सामाजिक सम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ) इस सम्मेलन का दृढ़ विचार है कि जाति-व्यवस्था राष्ट्रीय एकता की सबसे बड़ी बाधा है। जब तक इन व्यवस्था का मूलोच्छेद नहीं हो जाता तब तक हम राष्ट्रीय एकता प्राप्त नहीं कर सकते। अतः यह सम्मेलन बुद्धिजीवियों तथा जन-साधारण को जाति-व्यवस्था के अनाचारों के प्रति जागरूक बनाकर इस व्यवस्था के उन्मूलन के लिए देश भर में आन्दोलन बनाने का निश्चय करता है।^{१२} सन् १९३१ ई० में जस्टिस पार्टी के नेता ने कहा, भारतीय राष्ट्रीयता का स्वप्न जाति-पाँति के समाप्त होने पर ही पूर्णतः साकार हो सकेगा।^{१३} ये सब उक्तियाँ तथा भारतीय संविधान की उपयुक्त धाराएँ सामाजिक परिवर्तन के लक्षण हैं।

पर इन सबके बावजूद अभीष्ट सामाजिक परिवर्तन क्यों नहीं होते? यह इसलिए कि समाज की पौराणिक धार्मिक धारणाएँ इस मार्ग में बाधा बनती हैं। इन धारणाओं में हमारी अग्रणी पीढ़ियाँ का युक्तिपोषण संचित है और इनमें अतर्कित आधिपतिक विचारात्ता के कारण सामाजिक परिवर्तन का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इसी सामाजिक इन्द्रजाल से जाति-व्यवस्था को घबित मिलती है। अतः जब तक लोगों की जाति-सम्बन्धी चिरपोषित भावा भाव नहीं होगी तब तक जाति-व्यवस्था भी कायम रहेगी।

जाति-व्यवस्था का वर्तमान रूप

जाति क्या है ? इसकी वर्तमान स्थिति कसी है ?—ये दो प्रश्न हैं जिनका उत्तर हमें ढढना चाहिए । हिन्दुओं को जटिल तथा विचित्र जाति-व्यवस्था की परिभाषा और व्याख्या के प्रसंग में विद्वानों ने इस विषय पर बहुत-बहुत लिखा है । जब व्यक्ति का सामाजिक दर्जा पूर्व निर्दिष्ट रहता है, जिसमें कि सब लोग अपना अपना भाग्य लेकर जन्म लेते हैं और उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की आशा नहीं की जा सकती है, तभी वग जाति का चरम रूप धारण करता है और जाति बन जाने के बाद वग की गतिशीलता कबया भ्रष्ट हो जाती है । सिद्धान्ततः जाति-व्यवस्था के अतःपत सम्पूर्ण समुदाय की परतों में कबया स्थायी तथा अटल रूप से बँट जाता है ।^१ हज़ ने जाति की परिभाषा देते हुए इस ऐसी सामाजिक वग बनाया है जिसकी सदस्यता (क) जन्म से ही निर्दिष्ट हो जाती है और (ख) उसके साथ ही विशेष प्रकार के कृत्रिम प्रतिबंध और सुविधाएँ अनुलग्न रहती हैं । इस वग के प्रति समाज के अन्य सदस्यों का एक विशेष दृष्टिकोण रहता है । अतः प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक सत्ता उसकी जाति के कारण तरह-तरह के जन्मजात प्रतिबंधों तथा सहूलियतों से निर्धारित होती है ।^२

हिन्दुओं के सामाजिक श्रेणी विभाजन को व्यक्त करने के लिए यूरोप-वासियों में सबसे पहले पुतगालिया ने 'कास्टा' (कास्ट) शब्द का प्रयोग किया, जिसका अर्थ होता है नस्ल, गोत्र या प्रकार भेद ।^३ सेनाट का कहना कि जाति एक प्रकार का सकुचित निगम है जिसमें दूसरों के लिए स्थान नहीं है और कम-से-कम सिद्धान्ततः, यह निगम कठोर रूप से पित्रागति पर आधारित है । इसका अपना स्वतंत्र, परम्परागत संघटन रहता है जिसमें एक मुखिया होता है और एक पचायत । अन्त में जाने पर समस्त जाति की एक सभा बैठती है । वह सभा जाति के सम्पूर्ण अधिकारों से समन्वित रहती है । कोई विशेष त्योहार मनाने में भी जाति के सभी लोग समवेत रूप से उनमें भाग लेते हैं । जाति के सदस्यों की एकता का आधार होता है उनकी आजीविका, विवाह, भोजन तथा दृष्टान्त-सम्बन्धी आचार विचार और सामाजिक प्रथाओं की एकरूपता ।

जाति-व्यवस्था

जातीय सघटन के अधिकारों का क्षेत्र काफी प्रायः रहता है उन अधिकारों के बल पर ही जातीय सघटन अपने सदस्यों को अनुशासित करता है और अपराधी सदस्यों के लिए भ्रष्टचरोपयुक्त दण्ड का विधान करता है। यह दण्ड बहुधा स्थायी या अस्थायी सामाजिक बहिष्कार के रूप में दिया जाता है। यह बहिष्कार का भय वास्तव में इतना प्रबल होता है कि उसके आधार पर ही समुदाय की सघटित सत्ता कायम रहती है।*

सर एच० रिडल के अनुसार जाति का मतलब है—सबसामाय नाम वारं परिवारों तथा दलों का संघ, जो अपने को किसी विधि-पौराणिक देव या मानव की सन्तान मानते हैं और जिनका कोई वागन पैगा होता है। अधिकारी विद्वानों का मत है कि उस समुदाय में सम्मिलित परिवार या दल उस समुदाय के अभिन्न भग्न होते हैं।* सर ई० ए० गेट के अनुसार जाति के दो मुख्य लक्षण हैं

(१) जाति के सभी सदस्य एक ही मूल से अपना उद्भव मानते हैं, और (२) सब-से-सब एक ही वागन भागीविका या वृत्ति ग्रहण करने में विश्वास रखते हैं। उनका विचार है कि जाति समसंग, सजाति-पाणिप्राही (एंडोगेमस) लोग के एक दल या दत्ता के संघर्षों को जाति कहना चाहिए। जाति के सदस्यों की एक परम्परागत वृत्ति होती है, और वे अपने को एक ही मूल से उद्भूत मानते हैं। साधारणतः वह एक ही सजातीय समुदाय का भग्न माना भी जाता है।*

(१) जाति की संस्थिता उही लोग को प्राप्त होती है जिनके पूर्वज उस जाति के सदस्य थे, अर्थात् जाति के सदस्यों के वागन ही उस जाति के सदस्य माने जाते हैं, और (२) उस समूह में अविजय, अटल सामाजिक निषेध रहता है कि सदस्यगण अपनी जाति से बाहर विवाह-सम्बन्ध न करें। इन बातों से ही प्रत्येक समूह का एक विधि-गाम होता है। फिर वस वई छोटे-छोटे समूहों को मिलाने पर एक बड़ा समूह बनता है और उसका भी एक सामाय नाम होता है। पुनः ऐसे बड़-बड़ समूह भी अपने-आप पर और बड़े समूह के भग्न होते हैं जिसका भी एक अलग नाम रहता है।*

इस प्रकार हम देखते हैं कि जाति का दो बुनियादी तत्त्व हैं (१) सजाति विवाह तथा (२) वागन (हरिद्विटा)। तदनुसार कोई पुरुष अपनी ही जाति की स्त्री से विवाह कर सकता है। जातियों की सजाति-पाणिप्राही उपजातियों की स्त्री हैं। ये उपजातियाँ भी बड़े बहिर्जातीय पाणिप्राही (एक्सागेमस) समूहों में विभक्त रहती हैं। हिन्दू कानून के सख्त नियमों के अनुसार रक्त-सम्बन्धियों के बीच विवाह वर्जित है। पुत्र, विधवा भी पुरुष या नारी के माता पिता

के भाइयों या बहना के बराबर भी आपस में शादी-ब्याह नहीं कर सकते। इस प्रकार पितृपदा से छः पीढ़ियों तक तथा मातृपथ से चार पीढ़ियाँ तक के लोगों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध वर्जित है। इसका अलावा, अनुलोम विवाह (हाइपरगमी) की भी प्रथा है, जिसके अनुसार ऊँची सामाजिक स्थिति के लोग निम्नस्तरीय परिवार की कन्या तो ग्रहण करते हैं परन्तु अपनी कन्या का विवाह वैसे परिवार में नहीं करते। बहिर्जातीय विवाह का प्रथा भी अनेक रूपों में प्रचलित है। फिर गोत्र के नियम भी माने जाते हैं। सजाति पाणिग्रही समूह में किसी एक पूजक के बग़ल के समूह को, जिसमें बहिर्जातीय विवाह का प्रथा होती है, गोत्र कहा जाता है। गोत्र के नाम विभिन्न पुरातन ऋषियों के नाम पर रखे गए हैं। प्रामाण्य एक गोत्र वाले लोगों के बीच शादी-ब्याह नहीं होता। यदा-कदा होता भी है तो उन कुल-कुटुम्बा को बाद ही देखकर, जिनके बीच विवाह सबथा वर्जित माना जाता है। किसी भी व्यक्ति को वंशगति से जन्मना गोत्र प्राप्त नहीं होता, यह द्विज को ही उपनयन-संस्कार के समय मिलता है।

जाति-व्यवस्था के कारण खान-पान के अनेक प्रतिबंध माने जाते हैं। इन प्रतिबंधों का सम्बन्ध आदिम निषेधा (ट्यू) से है। ऐसे सात निषेध बहूत ही महत्वपूर्ण हैं। यथा,

(१) पक्ति निषेध—इस निषेध द्वारा निर्धारित है कि किन किन जाति के लोगों की पाँत में बैठकर भोजन करना चाहिए, और किनकी पाँत में नहीं।

(२) पाक निषेध—इस निषेध द्वारा निर्धारित है कि किन व्यक्तियों द्वारा पकाया हुआ भोजन ग्रहण किया जा सकता है और किनके द्वारा पकाया हुआ नहीं।

(३) भोजन निषेध—इस निषेध द्वारा निश्चित है कि भोजन करते समय किन संस्कारों का पालन करना चाहिए।

(४) जल निषेध—अर्थात् किसके हाथ का पीना चाहिए और किसके हाथ का नहीं।

(५) साय निषेध—इस निषेध के आधार पर विचार किया जाता है कि मनुष्य क्या साय और क्या न साय।

(६) टुकड़ा-पानी निषेध—अर्थात् किसका टुकड़ा-पानी पीना चाहिए और किसके साय बैठकर पीना चाहिए।

(७) पात्र निषेध—अर्थात् खाने-पीने या भोजन पकाने के लिए किस प्रकार का बर्तन व्यवहार में माना चाहिए।^१

एक ही वहिर्जातीय-पाणिप्राही समूह व सन्त्य एक माप बँठकर खा सकते हैं। किन्तु विभिन्न वहिर्जातीय-पाणिप्राही समूह के सन्त्य भी यदि उनके बीच साणी-व्याह होता है तो एक पाँत म बँठकर भोजन कर सकते हैं। सामायत भोजन और विवाह सम्बन्धी निषेध साथ-साथ चलते हैं। यदि किन्हीं दो गोत्रों म ववाहिक सम्बन्ध होता बन्द हो जाए और वे अपन समूह के बाहर विवाह करना छोड़ समूह के भीतर ही ववाहिक सम्बन्ध गुरू कर दें तो उन दोनों का साथ बँठकर भोजन करना भी बन्द हो जायगा।

पाक निषेध के तो जितन ही प्रभद हैं। सभा जाति व लोग म एवने (अर्थात् दूध या घी के बन हुए) और बच्च (अर्थात् जल सिद्ध) भोजन म अंतर माना जाता है। पकवा भोजन तो साधारणतः गूद समझा जाता है किन्तु बच्चा भोजन कोई हिंदू तभी ग्रहण करेगा जबकि उसे उसने किसी स्वजातीय अथवा किसी ब्राह्मण न पनाया हो।

भोजन निषेध भी कुछ कम दुर्गोच नहीं। इसके अनुसार किसी अपरिचित को छाया भी भोजन पर नहा पडनी चाहिए और न भोजन व साथ किसी अपवित्र वस्तु का ससग होना चाहिए। भोजन करने के पूर्व कमडा पाण्ड सूती बदन धानि वस्तुमा का स्पश नहा करना चाहिए। गया सूअर और कुत्ते धानि का भी स्पश वर्जित है। जल-सम्बन्धी निषेध भी प्रायः इसा प्रकार के हैं।

विभिन्न जातियों की सन्त्या व धारे म श्री ए० व० दत्त ने लिखा है कि प्रायः साँचटा के अनुसार छोटी-बड़ी सभी जातियों की कुल सन्त्या तीन हजार म अपिच है जिनम कुछन की सन्त्या दजन इध दजन है तो कुछन की साता की।^{११} परन्तु मूल वण (जाति रग) बवल चार ही हैं (१) ब्राह्मण (२) क्षत्रिय (३) वय और (४) दूद। प्रथम तीन वर्णों की डिजाति या त्रिज कहने हैं। मनु के अनुसार अनेक जातिमा इन मूल वर्णों के सम्मिश्रण से और तत्पश्चात् उन मिश्रण सन्त्याना के पुनर्मिश्रण अथवा अन्तर्मिश्रण से निबनी है। इन प्रकार से उत्पन्न जातिमा म हैं (१) मूडाभिषिक्त (ब्राह्मण-क्षत्रिय) (२) माहिय (क्षत्रिय-वय) (३) वरण (वय गू) (४) सम्बन्ध (ब्राह्मण-वय) (५) त्रिया (ब्राह्मण गू) (६) उप (क्षत्रिय गू) (७) गूत (क्षत्रिय-ब्राह्मण) (८) सोप (वय-क्षत्रिय) (९) बनेह (वय-ब्राह्मण) (१०) अयोग (गू-वय) (११) सत्री (गू-क्षत्रिय) (१२) चाडाल (गू-ब्राह्मण) (१३) पवत (ब्राह्मण उप) (१४) माभीर (ब्राह्मण सम्बन्ध) (१५) शियात (ब्राह्मण वय) (१६) पुत्राप (त्रिया गू) (१७) कुचुट (गू-त्रिया)

(१८) स्वपाक (खत्री उग्र), (१९) वैत (वदेह अम्बष्ठ), (२०) सरिध (दास्य प्रयागव), (२१) मैत्रेयव (वैदेह प्रयागव), (२२) भागव या दास (निपाद प्रयोगव), (२३) करवार (निपाद-वदेह), (२४), भेद (वैदेह निपाद), (२५) माध (वदेह-करवार), (२६) पाडु सोपाक (चाडाल वदेह), (२७) अहिन्दक (निपाद-वैह), (२८) सोपाक (चाडाल पुष्कप), (२९) अतेवामिन् (चाडाल निपाद) ।^{१४}

जातिया की आधुनिक विस्तृत सातिका के लिए जे० एच० हटन लिखित 'कास्ट इन इंडिया (भारत की जातिया) नामक पुस्तक दखनी चाहिए। उन्होंने ६०० जातिया और बहिष्कृत जातियो की सूची दी है। परन्तु यह सूची भी नितांत सर्वांगीण नहीं है।

धस्तु, जाति एक प्रकार की सामाजिक इकाई है। प्रत्येक जाति को अपना विशेष आदर्श और नैतिक विधान रखने की आजादी है। प्रत्येक जाति को अधिकार है कि वह अपने किसी सदस्य का बहिष्कार करे, और पुन उसे अपने में शामिल कर ले। एम काम के लिए जाति की पचापत या बिरादरी ही 'यायपीठ' है। परन्तु सभी जातियो के धर्माधिकारी ब्राह्मण है। अधिकारत ब्राह्मण सभ्यता में सर्वप्रमुख है। अन्य सभी जातिया ब्राह्मणा के नीचे हैं। ब्राह्मणा के बाद स्थान है राजपूता और भूमिहारो (निम्नकोटि के क्षत्रियो या ब्राह्मणो) का। तत्पश्चात् वैश्य हैं और वर्या के नीचे शूद्र (कहार, कुरमी, गोप, भुइर्या आदि)। परन्तु सबसे नीचे हैं अस्पृश्य या अछूत (डोम, चाडाल, दुमाध, चमार आदि)।

जाति-व्यवस्था के अन्तगत व्यक्ति को जन्म लेते ही एक निश्चित वातावरण मिलता है। इस वातावरण से उसको न तो घनादम्यता विलग कर सकनी है और न निवृत्तता, न सफलता, न असफलता।^{१५} उसके सभी प्रकार के व्यवहार और सम्भव उसकी जाति के नियमो द्वारा नियमित होने हैं, यहां तक कि बर-वध या पेशे के चुनाव में भी उसे जाति के नियम मानने पड़ते हैं। सभ्य में, व्यक्ति अपनी जाति के आचार विचार के अनुसार ही शादी-ब्याह, खान पान, बपडा उसा और पूजा-पाठ कर सकता है। क्या जन्म, क्या मृत्यु क्या विवाह क्या उपनयन, जाति-व्यवस्था के अन्तगत कही भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गुंजाइश नहीं। पर्वों तक का भी जाति के आधार पर वर्गीकरण किया गया है—जस, भावणी पूर्णिमा ब्राह्मणा का पर्व है तो विजयादशमी क्षत्रियो का, दीपावली वर्यो का, तो होली शूद्रा का। व्यक्ति का सामाजिक मान भी उसकी जाति के आधार पर ही निर्धारित होता है। इसी प्रकार एक जाति की तुलना में दूसरी जाति का भी मान स्थिर किया जाता है।

जाति-व्यवस्था में आज अनेक प्रकार के परिवर्तनों का सूत्रपात हो गया है। अधिकांश सांस्कृतिक तथा वृत्ति-मूलक क्षेत्रों में सबके सामाजिक वर्गों की अनुपस्थिति (हारिज-टल) तथा उदय (वर्टिकल) मायताएँ काम कर रही हैं। विभिन्न वर्गों और जातियाँ अन्धकार और कृतव्यय में बुनियादी रहोवदल हो गई हैं। ब्राह्मण अथवा धर्माधिकारी धर्मोपदेशक अथवा नीति विधायक नहीं रहे। या कुछ वर्ष ही ब्राह्मण आज भी मिन जाते हैं परन्तु धर्म गिदा और धर्मोपदेश पर ब्राह्मण जाति का एकाधिकार अथवा नष्ट रहा। योद्धा क्षत्रियों का भी अस्तित्व मिट-सा गया है। अथवा का रूप भी बदला हुआ है। अलवत्ता गुण और दलित जातियों की स्थिति व्यवहारतः पूर्ववत् ही है। परन्तु किसी जमाने में ब्राह्मण धर्म-पुरोहित अथवा क्षत्रिय सामन्तीय शासन (एक विशय युग में), अथवा बुजुर्ग और शूद्र एक दलित जातियाँ सवहारा—यह आधुनिक साम्यता काय बपोन-कल्पना नहीं। विषय की गहराई में उतरने पर हम देखेंगे कि हिन्दुओं की सामाजिक गतिविधि के इतिहास में इन पाँच वर्गों के समय के प्रतिरूपित कुछ नहीं है।

पनिवर्तन¹¹ न भारत का बहुजातिक साम्राज्य स्थापित्व का अति भूरि प्रशंसा का है। उनका मत है कि जाति-व्यवस्था नहीं रहती तो भारत बबर हा गया होता। एरिंग ने भी माना है कि जाति व्यवस्था के कारण समाज में स्वच्छता और सुव्यवस्था की भावना की प्रोत्साहन मिलता है और किसी मानी म, इसका द्वारा हिन्दू-समुदाय का अलग-थलग विभिन्न वर्गों में एकता बनी हुई है।¹² म भारतें नितात विवादास्पद है। यदि जाति-व्यवस्था के कारण स्वच्छता बवती है तो शूदरी और इससे कारण अस्वच्छता भी कायम रहती है। जया कि पी० जांच न कहा है साधारणतः हिन्दू लोग सपाई-साम्यधी स्वच्छता की प्रयोग त्याहार या पय-नाम्यधी स्वच्छता पर अधिकांश ध्यान देते हैं। रासायनिक दृष्टि से जल कितना भी गंदा क्या न हो यदि वह धमपूत या पयपूत है तो एक हिन्दू अन्धभव उस जल का व्यवहार करेगा।¹³ दूसरे इसी समकथन, अनेकालम्ब (नूरत) समान-व्यवस्था का कारण भारत में राष्ट्रीयता की भावना अभी बिनसित नहीं हो सकी। इसी अनेकालम्ब समाज का कारण यहाँ न तो नतिवत्ता का कोई समयमाय स्तर निर्धारित हो गया और न समष्ट सामाजिक जीवन का विकास हुआ।

या तो जाति-व्यवस्था अटल और अपरिवर्तनाय मानी जाती है, पर क्या यह समाज विज्ञान की दृष्टि से अभी सम्भव है? यदि तो हमारा स परिवर्तित हो रही है और आज भी परिवर्तनशील है। अभी-अभी कोई बहिर्जातीय बल

कालांतर में बहुत बड़ा ही जान के कारण छोटे छोटे समूहों में बँट जाता है।^{१६} इसके अतिरिक्त कितने ही नये-नये सजाति-पाणिप्राही समूहों का बराबर निर्माण होता रहता है, जिन्हें आप जाति या उपजाति कह सकते हैं। एक स्थान से दूसरे नये स्थान पर जाकर बस जाने से भी जाति या उपजाति में परिवर्तन हो जाता है। आजीविका में परिवर्तन होने से अथवा नया धार्मिक या सामाजिक रस्म रिवाज अपनाने से भी जाति बदल जाती है। सामाजिक मान में भी वृद्धि होने से ऐसे परिवर्तन की सम्भावना है। कुछ दिनों पहले तो विधवा विवाह को मानने या न मानने से भी जाति या उपजाति में फेर-बदल हो जाता था। इसलिए जाति विरोध के लिए समाज में अपनी जाति की मर्यादा बढ़ाने के लिए सामूहिक रूप से प्रयास करते हैं। प्रचार और अद्यतन से भी जाति का नाम और सामाजिक स्थिति बदल जाती है। जैसे, 'भानाम के बृत्तियाल बनिये वास्तव में डोम हैं पर अब वे साधारणतः बनिया ही कहलाते हैं। इस तरह प्रत्येक दशवर्षीय जनगणना में विश्वकर्मा ब्राह्मण (पांचाल गिल्पी), गहलोत राजपूत (अमार) नाई ब्राह्मण (हज्जाम) आदि आदि नई जातियाँ बन जाती थी।^{१७} विभिन्न जनगणनाओं के प्रतिवेदन का तुलनात्मक अध्ययन करने से जातियों में होने वाले इन परिवर्तनों का पता चल जाएगा। उपयुक्त जातियों में से अधिकांश ने सन् १९२१ ई० की जनगणना में क्षत्रिय या वैश्य होने का दावा किया था। सन् १९३१ ई० की जनगणना के समय इन लोगों ने अपने को एक विशेष प्रकार का ब्राह्मण बताया।^{१८} अब हम कामस्यो के विषय में विचार करें। वे सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। अठारहवीं सदी में वे महज सूद्र समझे जाते थे। अब उनका स्थान ब्राह्मणों के बाद ही आता है। कामस्यों की कुछ उपजातियाँ, जैसे मायूर और निगम, अपने को ब्राह्मण ही कहती हैं। उनकी अथवा उपजातियाँ अपने को क्षत्रिय मानती हैं और चित्रगुप्त चाण्य होने का दावा करती हैं। इसी प्रकार ग्यालों का दावा है कि वे चन्द्रवर्तीय यादव क्षत्रिय हैं। अंग्रेजी शिक्षा और सरकारी नौकरों से भी लोगों को अपनी जाति बदलने में मदद मिली है।^{१९} इस तरह हम देखते हैं कि जाति का रूप स्थिर नहीं। इसमें अक्सर सामाजिक परिवर्तन होते रहते हैं, हाँ, यह दूसरी बात है कि ये परिवर्तन बहुत ही धीरे-धीरे और सूक्ष्म रूप से हों। इस प्रसंग में एथनोवेन ने बड़ी ही मौजू और पुरमजाक बात कही है कि आधुनिक भारत में मोटर के खलाशियाँ ने शोफरों या मोटरचालकों की एक जाति बना ली है और अब गायर उन लोगों में रोलस-रायस जाति और फोर्ड जाति बनेगी तथा राल्फरायस जातिवाले फोर्ड जातिवालों

के घर में न शादी-ब्याह करेंगे, न उनका छुआ साएंगे । २३

इन परिवर्तनों के बावजूद जाति-व्यवस्था के बंधन ढीले पड़ने के कोई संकेत अभी दिखाई नहीं पड़ते, बल्कि विभिन्न जातियों की प्रवृत्ति में वस एक ही परिवर्तन हुआ है कि व अथ ऊँची जाति बनना चाहती हैं और अधिक सामाजिक मर्यादा प्राप्त करना चाहती हैं । इस तरह का परिवर्तन जाति-व्यवस्था में निरंतर हो रहा है, परंतु व्यवस्था के रूप में जाति विधान क्या-क्या रूपों कायम है । उससे विघटन का कोई चिह्न नहीं दीखता । विभिन्न जातियों में एक प्रचार की वृद्धि-वृद्धि जग गई है और सामूहिक एकता की भावना से अनुप्रेरित होकर वे और जोर से जाति-व्यवस्था से विपत्तना चाहती हैं । पहले छोटे से व्यक्ति में जिन्हें स्पष्ट रूप से जात था कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं । वे अपने अष्ट-बुरे बर्तनों के लिए पृथ्वी पर ब्राह्मणों के प्रति और मरुत के बाद देवताओं के प्रति अपने को उत्तरदायी समझते थे । उन्हें बमवाद में अटूट विश्वास था । परंतु अब लोगो के दिमाग में जातीय भावना दूसरे ही प्रकार से काम करने लगी है । प्रत्येक जाति अपने सामाजिक अधिकार और राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपने को संघटित कर रही है । जातीय संघटन के आधार पर चुनाव भी लड़े जाते हैं । इस तरह से आज अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा' अखिल भारतीय वायस्य महासभा', 'त्रिवेणी संघ', अखिल भारतीय दलित जाति संघ आदि संघटन बन गए हैं । इन परिवर्तनों का देखने हुए हम क्रोडर, मीज और बूगल के मतों पर विचार करना चाहिए । शायद वे अनुसार जाति किसी प्रजातीय इकाई या सजाति पाणिप्राही वसागत उपसंघ हानी है, जिसका समाज-व्यवस्था में अथ उपसंघ की तुलना में ऊँचा या नीचा स्थान रहता है । २४ मीज के अनुसार, 'जिस समाज में जाति-व्यवस्था है उसमें अनेक सजाति पाणिप्राही संघ या जातियाँ होती हैं । उन जातियों में सामाजिक दृष्टि से सबका अलग रहने की प्रवृत्ति रहती है और वे वसागुणों द्वारा अपने को चिरस्थायी बनाए रखती हैं । वे सांस्कृतिक आधार पर परस्पर से अविच्छिन्न होती हैं और उपयुक्त पारो प्रवृत्तियों से अनुप्राणित होकर अपना सामाजिक सीमाओं के अन्दर अनेकानेक जातियों में बँट जाती हैं । २५ बूगल के अनुसार, 'अलग अलग रहने की प्रवृत्ति, ऊँच-नीच, छोटे-बड़ का भेद भाव तथा वसागत स्ववृत्ति की वृत्ति—ये तीनों तरह जाति में सामिल रहते हैं । आज जाति प्रथा की पूरा परिभाषा प्राप्त करने के लिए इन तीनों तथ्यों पर विचार करना चाहिए । हमारा विचार है कि यह

व्यवस्था उस समाज में पाई जाती है जिसमें पित्रागति के आधार पर अनेक विशिष्ट समूह होते हैं, जो परस्पर ऊँची-नीची स्थिति में रहते हैं या परस्पर-विरोधी होते हैं। जिस समाज में भी यह व्यवस्था है उसमें सामाजिक उन्नति, समूह-सम्मिश्रण या रक्त मिश्रण तथा व्यवसाय-परिवर्तन के सिद्धान्त का विरोध किया जाता है, बल्कि ये बातें बर्दाश्त नहीं की जाती जाति व्यवस्था के कारण हिन्दू-समाज परस्पर विरोधी, छोटे-छोटे अनेक समाजों में बँट गया है।" २१

हिन्दू-समाज में आज तीन प्रकार की प्रगतिशील शक्तियाँ काम कर रही हैं। सबसे पहले वे लोग हैं जो जाति प्रथा को एक बुराई मानते हैं और इसका अन्त कर देना चाहते हैं। दूसरे लोग वे हैं, जो समझते हैं कि जाति व्यवस्था में कुछ बुराईयाँ आ गई हैं और उन बुराईयों को दूर करके इस व्यवस्था को पुनः शुद्ध मौलिक रूप में लाने की चेष्टा होनी चाहिए। तीसरे प्रकार के लोग वे हैं, जो जाति-व्यवस्था को हिन्दू-संस्कृति का आवश्यक अंग समझते हैं किन्तु अपरम्परा को मिटा देना चाहते हैं। इन तीन प्रकार के लोगों के अलावा एक चौथा दल भी है जो समझता है कि हम अपने आदर्शों से भ्रष्ट हो गए हैं, अतः हमें समाज का पुनर्गठन करना चाहिए और जिन आदर्शों पर हमारे पूज्य चला करते थे, उन्हें पुनः प्रतिष्ठित करना चाहिए। इस प्रकार के विचार रखने वाले लोग जाति-व्यवस्था की एक नई परिभाषा देते हैं। वे समाज का चार प्रकार के समूहों में बाँटते हैं (१) आदर्शवादियों का समूह, जो जीवन के प्रति दूरदर्शी दृष्टिकोण बरतता है और अपने आदर्शों के अनुरूप जीवन बिताता है, (२) पराधीनवादियों का समूह जिनका दृष्टिकोण अर्थात् मनुचिन्तित होता है, फिर भी जो अपने जीवन से आगे की बात भी सोचते हैं, (३) वस्तुवादियों का समूह, जो अपने जीवन से आगे की बात नहीं सोचते (४) उन लोगों का समूह जिनका कोई अपना दृष्टिकोण नहीं होता और जैसे-तैसे जीवनयापन करते हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार इन सबको क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सूद्र कहा जाता है। २२ सन् १९०१ ई० के बाद की प्रत्येक जनगणना के अवसर पर इस बात की थोड़ी आलोचना हुई है कि जनसंख्या-सम्बन्धी प्रतिवेदन में जाति-सम्बन्धी बातों का क्या-क्या उल्लेख किया जाता है। यह भी आरोप लगाया गया है कि जनगणना के समय व्यक्ति पर जाति की मुहर लगाकर जाति-व्यवस्था का एक प्रकार में नव-जीवन प्रदान किया जाता है। इसलिए जनगणना के प्रतिवेदन में जाति-सम्बन्धी किसी प्रकार के विवरण का उल्लेख करने के विरुद्ध सन् १९३१ ई० में आन्दोलन चलाते की

भी चेष्टा हुई। मत कहना चाहिए कि लागू जाति-व्यवस्था को नीला करना चाहते हैं और विभेद की दीवारों को भी तोड़ देना चाहते हैं। १८

इन बातों के बावजूद, जसा कि हमने ऊपर कहा है, जाति प्रथा अपने समस्त मूलतत्त्वा के साथ अभी भी कायम है। बल्कि, जो लोग इसके विरुद्ध हैं, उनकी भी एक विशेष जाति मानी जाती है। तात्पर्य यह है कि जाति-व्यवस्था एक प्रबल सामाजिक प्रमाण और चिरवालीक सांस्कृतिक घटना है।

जाति-व्यवस्था का उद्भव और विकास

हिंदू जाति-व्यवस्था समाज में प्रचलित दन्तकथाओं पर आधारित है। पर इन दन्तकथाओं के प्रणेता कौन थे और उन्होंने इन कथाओं की रचना क्यों की? दूसरे शब्दों में, हम जानना चाहते हैं कि जाति-व्यवस्था का प्रारम्भ और विकास किस प्रकार हुआ। जैसा कि काक्स ने बताया है, जब हम पूछते हैं कि भारत में जाति-व्यवस्था कैसे शुरू हुई तो वस्तुतः हम जानना चाहते हैं कि हिंदू समाज की स्थापना किस प्रकार हुई।^१ परंतु इस व्यवस्था की उत्पत्ति के सामाजिक कारण ढूँढने की चेष्टा व्यर्थ है। कोई भी सामाजिक व्यवस्था प्रादुर्भूत नहीं होती उसका विकास ही होता है।^२ अतः जाति-व्यवस्था के उद्भव या विकास को समझने के लिए हम इतिहास के अनेक पेशेदारों और सम्ये रास्ता से गुजरना होगा।

जाति के उद्भव को लेकर कितने ही सिद्धान्त प्रचलित हैं। इनमें से माटे तौर पर पाँच सिद्धान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। उनमें भी तो सबसे पहले परम्परागत सिद्धान्त उल्लेखनीय है, जो मनु-संहिता में मिलता है। तत्पश्चात् आता है आजीविका-सम्बन्धी सिद्धांत, जिसके सबसे प्रसिद्ध प्रवक्ता हैं नेस्फील्ड। तत्पश्चात् आती हैं इवेट्मन की जनजातीय और धार्मिक व्याख्या, सेनाट की परिवार और समुदायपरक व्याख्या, रिजले की प्रजाति और अनुलोम विवाह परक व्याख्या।^३ इन सिद्धान्तों को हम दो प्रशस्त श्रेणियों में बांट सकते हैं (१) वैसे सिद्धांत जो सांस्कृतिक व्याख्या पर आधारित हैं (२) वे सिद्धांत जो प्रजातिपरक व्याख्या पर आधारित हैं।

प्रो० सोरोकिन का विचार है कि "प्रजाति, चयन और वंशगति-सम्बन्धी बातें लोगों को बहुत दिनों से पता थीं। भारत के धार्मिक ग्रंथों में यह सिद्धांत रूप से प्रतिपादित है कि विभिन्न जातियाँ ब्रह्मा की देह के विभिन्न अंगों से निकली हैं और उनमें मौलिक अन्तर है। फलतः रक्त का सम्मिश्रण या अंतर्जातीय विवाह या प्रजातियों के बीच किसी प्रकार का सम्पर्क सबसे बड़ा अपराध माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक मान या दजा उसके माता पिता के रक्त के आधार पर निर्धारित होता है। प्राचीन समाज में लोगों

का प्रजनन-तत्त्व की बातें खूब मान्य थीं और वे उस पर भ्रमल भी करते थे।^{१४} इन प्रकार सोरोकिन न प्रजातीय विगुदता वाली बात मान ली है। उनका यह भी विचार है कि धात से हजारों वर्ष पहले हिन्दुओं में एसे भी रानीतिन व जिनका विधान में गहरा प्रयोग था।

सप्तमी ए० ई० चान्स और हावर्ड बेकर न लिखा है, 'यह महत्वपूर्ण बात है कि भारतीय जाति-व्यवस्था के आधार स्तम्भ चार वर्ण हैं, और चारों वर्णों का तात्पर्य चार रंगों से है। ये वर्ण हल्के श्वेत से लेकर गाढ़े कृष्ण तक हैं। इस व्यवस्था के गाय पर पुरोहित ब्राह्मण हैं जो लगभग ३००० वर्ष ई० पू० भारत पर आक्रमण करने वाले आर्यों के वर्ण हैं।^{१५} आर्यों और उनके द्वारा पराजित रंगीन जातियों की संश्रुतियों की तुलना करने हुए टयायनबी न लिखा है 'दोनों जातियों की गन्त-साम्य उनकी अपनी अपनी संश्रुति के अवतार अनुपात में थी।^{१६} ब्रिटेनका भी कहना है कि आर्यों की विजय के पूर्व भारत में कृष्ण-वर्ण के लोग ही आबादी थी। इन कृष्ण-वर्ण न जातियों के प्रति उदत्त प्रकृति आर्यों को घोर घणा और शत्रुता थी, जिसे उन्होंने अपने तथा पराजित लोगों—सूदों—के बीच तरह-तरह की बाधाएँ लड़ी करके अभिव्यक्त किया।^{१७}

उपर्युक्त सभी मत प्रजातीय विरोध भावना और रक्त विगुदता के सिद्धान्त पर आधारित हैं। दूसरे शब्दों में, इन मतों का तात्पर्य है कि जाति-व्यवस्था आर्यों और द्रविडों की पारस्परिक सामाजिक शत्रुता के कारण बनी।

(१) परम्परागत सिद्धान्त

जाति-व्यवस्था के सम्बन्ध में सभी धर्मशास्त्रों स्मृतियों और पुराणों में उल्लिखित तथा सवाधिक प्रचलित सिद्धान्त ऋग्वेद के मण्डल १०, सूक्त ६०, मंत्र ११ १२ में मिलता है। ऋग्वेद के इस मंत्र की पुर्य-श्रुति कहते हैं।

इस सूक्त में जातियों की उत्पत्ति का कोई कारण नहीं बताया गया है, किन्तु यह सूक्त बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस मंत्र में आर्यगणों के भाव से मान लिया है। इस पौराणिक बर्णना का प्रभाव इतना प्रबल है कि इससे प्रति वर्णों में युग में हिन्दुओं ने कोई शक्य प्रकट नहीं की है।

जातियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुर्य-श्रुति में अतिरिक्त कुछ और सिद्धान्त या छोटी-मोटी पौराणिक बर्णनाएँ प्रचलित हैं। इन सबका भी उल्लेख हिन्दुओं के विभिन्न ग्रन्थों में हुआ है कि समय-समय पर युग का भाव-व्यवस्था के अनुसंधान से स्पष्ट है। इस प्रकार वर्णों की उत्पत्ति के विषय में तरह

तरह की बातें बताइ गई हैं। शतपथ ब्राह्मण (११, १, ४) में लिखा है कि भु, भुव, स्व, इन तीन शब्दों से ही वर्णों की उत्पत्ति हुई। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१११, १२, ६) में लिखा है कि वेदा से ही वर्ण उत्पन्न हुए—सामवेद से ब्राह्मण, यजुर्वेद से क्षत्रिय और श्रुग्वेद से वैश्य। पुनः शतपथ ब्राह्मण (१४, ४, २, १३) के अनुसार देवताओं और घसुरा से वर्णों की उत्पत्ति हुई। हरिवंश (११८, ६) में अमृत और मत्स्य सम्बन्धी सिद्धान्तों के आधार पर वर्णों का उद्भव माना गया है। ६ जगत्पिता ब्रह्मा की उत्पत्ति किस प्रकार सोने के शब्दों से हुई, उसका वर्णन करने के बाद मनु ने लिखा है कि मानव-सृष्टि की रचना के लिए ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मण, वाह्यु से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पर से शूद्र उत्पन्न किए। ७ परन्तु दूसरे श्लोक में मनु ने कुछ दूसरी ही बात कही है—'ब्रह्मा ने अपने शरीर के दो भाग किये। एक भाग पुरुष हुआ और दूसरा स्त्री। उस स्त्री में ब्रह्मा ने विरज उत्पन्न किया। विरज, सर्वोत्तम द्विजा, जान लो कि मैं ही हूँ सम्पूर्ण विश्व का स्रष्टा, जो पुरुष विरज की कठिन तपस्या से स्वयमेव आविर्भूत हुआ।' ८ महाभारत में भी वर्णों की उत्पत्ति के विषय में कुछ तरह की कहानियाँ आई हैं। शान्ति पर्व में मनु ने लिखा है, "जातियाँ मैं कोई अन्तर नहीं हूँ। मनु ने इस विश्व की रचना की और सब लोग जन्मना ब्राह्मण थे। तत्पश्चात् अपने अपने कर्मों के अनुसार लोग विभिन्न जातियाँ में बँट गए। निज द्विजा को इन्द्रिय-सुख प्रिय था, जो क्रोध और हिंसा लुब्ध थे, रवितम वर्ण के थे तथा जिन्होंने अपने कर्तव्य को त्याग दिया था, वे सब क्षत्रिय हुए। जिन द्विजा ने अपना कर्तव्य छोड़कर गो-पालन की वृत्ति अपना ली और खेती बाड़ी के काम करने लगे, तथा जिनका वर्ण पीत था, वे सब वैश्य कहलाए। जो द्विज असत्य भाषण, दुष्टाचरण में लिप्त रहते थे, लालची थे तथा सभी तरह के कुकर्म-मुकर्म किया करते थे और जिनका वर्ण काला था, वे शूद्र हो गए। इस प्रकार अपने कर्मों के अनुसार ब्राह्मणगण विभिन्न जातियाँ में बँट गए।" ९ महाभारत में उसी पर्व में यह भी उल्लिखित है कि चार जातियों की उत्पत्ति श्रीकृष्ण से हुई। तब फिर महामना श्रीकृष्ण ने सर्वोत्तम गो ब्राह्मणों को अपने मुख से, क्षी क्षत्रियों का अपनी भुजाओं से, क्षी वैश्यों का अपनी जघा से और क्षी शूद्रों को अपने चरणों से उत्पन्न किया। १० श्रीमद्भगवद्गीता में भी लिखा है "श्रीकृष्ण ने महा, 'गुणों और कर्मों के आधार पर मैंने साग का चार जातियों में बाँट दिया।' ११ विभिन्न जातियों के कर्तव्यों का वर्णन गीता के अठारहवें अध्याय में पाया है।

जातियाँ की उत्पत्ति को लेकर इस तरह की धीरे भी कितनी परम्पर-विरोधी कहानियाँ मिलती हैं। डा० ग्यूर ने तो संस्कृत-ग्रन्थों से मनुष्य के जन्म और जानियों की उत्पत्ति से सम्बन्धित उद्धरणों का १५२ पृष्ठा में सफल प्रस्तुत किया है। दूसरी भी एक मानवद्वय पुस्तक है—'मूल संस्कृत पाठ' धोरिजिल संस्कृत टेक्स्ट बुक १, जिसमें जातियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेकानेक पौराणिक कल्पनाएँ और गायत्रि सप्रहीत हैं। उसमें द्रुमने ने प्रश्न भी उठाया है कि वैदिक युग में जातियों का अस्तित्व था भी या नहीं।

वस्तुतः धार्मिक ग्रन्थों में जाति-व्यवस्था की उत्पत्ति का सगन्धिपूर्ण वर्णन नहीं मिलता प्रत्युक्त उन्मत्त तरह-तरह की अटकलबाजी है। कहा तो रहस्यपूर्ण ध्यास्या दी गई है, कहा पौराणिक कल्पना का सहारा लिया गया है और कहा-कही पर बस पुनितपोषण वर्णन मिलता है। अतः ने छुटकर कल्पना और अनुमान से काम लिया है। किन्तु सर्वाधिक प्रचलित कहानी यही है कि जातियाँ पुरुष या प्रजा के मुस बाहु जघा और चरण से प्रादुर्भूत हुए। इस विषय का सबसे प्राचीन उल्लेख ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में आया है। किन्तु जिस रूप में यह बात कही गई है उससे साह्य होता है कि यह 'यास्या' कायद एक रूपक मात्र है। पुराणों में या मनु के 'मानव धर्मशास्त्र' में वैदिक ग्रन्थों की यह रहस्यवादी रूपक शरी छोड़ दी गई है और तथ्या का वर्णन स्पष्ट बतलवा में किया गया है।

अब प्रश्न उठता है कि जातियों की उत्पत्ति के इनके विभिन्न विवरण क्या मिलते हैं? सम्भवतः द्रुमने निष्कर्ष की परीक्षा करने पर पता चल कि जातियों का विधान किसी न्यायाधिकृत दबना न किया।

धर्मों के कर्तव्य

किन्तु इस विषय की रक्षा के हनु उराने जो सर्वाधिक ज्योतिष्य है, उन लोगों के लिए जिनकी उत्पत्ति उगा मुस भ्रजा जन्म और पाँव से हुई थी विभिन्न (कर्म्य और) उपजीविशाएँ नियत कर दी। १४

वाचस्पति के लिए उगा पन्न और पाठन (दण्ड का), धर्मों और गुरुओं की रक्षा के लिए उगा पन्न दण्ड और रक्षा धर्मि कामानवध विण। १५

वाचस्पति का उगा धर्मों की रक्षा के लिए उगा पन्न दण्ड और रक्षा धर्मि कामानवध विण। १६

अथ पनुवाचन करे दान दे यग करे अन्नाड करे व्ययगाय करे, श्रुण दे और जमीन जाते। १७

“गूढो के लिए उमन एक ही कम निर्धारित किया कि वे उमन तीन वर्णों की विनयपूर्वक सेवा करें।”^{१८}

ब्राह्मणों की गरिमा

“मनुष्य नाभि के ऊपर (नीचे की अपेक्षा) पवित्रतर कहा जाता है, अतएव स्वयं अस्तित्वमान (स्वयम्भू) न इसको अपना पवित्रतम (अग) मुग घोषित किया है।”^{१९}

‘चूँकि ब्राह्मण की उत्पत्ति (ब्रह्मा के) मुख से हुई है और चूँकि वह अग्रजमा है और वेदों पर उसका अधिकार है, इसलिए वह अधिकारत इस सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है।’^{२०}

“क्योंकि स्वयं अस्तित्वमान ने पूण आत्म सयम करने के बाद उसे ही सर्वप्रथम अपने मुख से उत्पन्न किया, ताकि बलि की वस्तुएँ देवताओं तक पहुँचाई जा सकें और मनुष्य (पितृस) और इस विश्व को सुरक्षित रखा जा सके।”^{२१}

“कौन सजित प्राणी उसका अतिक्रमण कर सकता है जिसके मुख से निरन्तर स्वयं देवतागण बलि म चढाई गई वस्तुओं का उपभोग करते हैं और भृतक के लिए समर्पित वस्तुओं को पितरा का भोग बताते हैं।”^{२२}

ब्राह्मण का जन्म ही तब विधान की निधि की सुरक्षा के हेतु पवित्र विधान का एक शाश्वत अवतरण है और वह ब्रह्मा के साथ ही सलयित हो जाता है।”^{२३}

“एक ब्राह्मण, जब वह अस्तित्व ग्रहण करता है, पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ और उच्चतम और सभी उत्पन्न प्राणियों के स्वामी के रूप में जन्म लेता है।”^{२४}

विश्व में जो कुछ भी विद्यमान है, वह सब-कुछ उसकी उत्पत्ति की श्रेष्ठता के कारण ब्राह्मण की सम्पत्ति है, वस्तुतः ब्राह्मण इस सबका अधिकारी है।”^{२५}

‘एक ब्राह्मण चाहे वह मूख हो या विद्वान्, एक महान् दिव्यता का स्वामी है, ठीक उसी प्रकार जस कि अग्नि चाहे वह (पन के हविमुड के लिए) ले जाई जाए अथवा न ले जाई जाए, एक महान् दिव्यता है।’^{२६}

ब्राह्मणों का दंड

बौल सत्कार (कपाल मुडन) प्राणदंड के स्थान पर ब्राह्मण के लिए उपयुक्त है, परन्तु दूसरे वर्णों (के लोग) को प्राणदंड भुगनना ही पड़ेगा।”^{२७}

“किसी भी ब्राह्मण की हत्या न की जाए यद्यपि उसने सभी (सम्भव)

अपराधकर्म क्रिये हा एक धारापी को बनवाया गया था और उसकी सारी सम्पत्ति (उसके पास ही) दोष दा जाए और (उसके शरीर को) कोई आपाउ नहीं पहुँचाया जाए । २६

'किमी ब्राह्मण को हत्या कराने में अधिक दुःखी धाराप कृषो पर श्राउ नहीं है । श्राप्य एक राजा किमी ब्राह्मण का जान से मारने का विचार भी अपने मन में लाए । २७

दूदों का जन्म—दासता के हेतु

परन्तु एक दूद घटे वट की ही भयवा भरीत, दास-काय के लिए विद्या किया जा सकता है क्योंकि स्वयं प्रतितावमान १ उसकी सृष्टि ब्राह्मणों के दास होने के लिए ही की है । २८

एक दूद यद्यपि वट अपने स्वामी से मुक्ति पा चुका हो यद्यपि वह दासता से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि यह उक्त जन्म से ही साप सगा है । इससे उग कौन स्वतंत्र कर सकता है ? २९

'एक ब्राह्मण भ्रातृवत् होकर अपने दूद (दास) के सामान को उक्त कर सकता है क्योंकि उग (दास का) सम्पत्ति रखे का अधिकार नहीं है उसका स्वामी उसका स्वतंत्र पर अधिकार कर सकता है । ३०

एकमात्र ब्राह्मण की सेवा ही दूद के लिए श्रेष्ठ उपजीविका प्रोत्पिड है क्योंकि इसके अलावा वह जो कुछ भी करेगा उसका उक्त कोई फल नहीं मिलेगा । ३१

दूद को घन-सचय वदार्थि नहीं करना चाहिए यद्यपि वह (दत्ता करने में) समर्थ भी हो क्योंकि घन सचय करने करने वाला दूद ब्राह्मणों को पीडा देता है । ३२

दासता का पारितोषिक

'वे उसके नाम निजी परिवार (सम्पत्ति) से उपयुक्त जीवन निर्वाह-योग्य धन्य भव्य ही प्राप्तित करे और यह उसकी योग्यता, उसके उद्यम और उनकी सस्या पर जिनका भरण-शोषण करने के लिए वह बाध्य है विचार के पश्चात् ही किया जाए । ३३

'उच्छिष्ट भोग्य पदार्थ उसे भव्य ही दिया जाए और पुराने वस्त्र, धन का भव्यिष्ट और घरलू उपस्कर आदि भी । ३४

शूद्रों का दंड

“एकज मनुष्य (एक शूद्र) जो एक द्विज मनुष्य को भेदी गालियों के साथ अपमानित करता है, उसकी जीभ काटकर अलग कर दी जाएगी, क्योंकि वह निम्न वंश का है।”^{३८}

“यदि वह किसी (द्विज) का नाम और उसकी जाति का उल्लेख तिरस्कार के साथ करता है, तो उसके मुख में लस अगुल लम्बी जलने लोहे की कील घुसा दी जाएगी।”^{३९}

“यदि वह अह्वारवश ब्राह्मणों को 'कृत्य की शिक्षा देता है तो राजा उसके मुख और कानों में गरम तंत्र डाल दिये जाने की व्यवस्था करेगा।”^{४०}

‘निम्न वंश का मनुष्य चाहे वह जिस किसी भी अंग से क्या न (त्रि वर्णों में से किसी भी मनुष्य को) उच्चतम (वर्णों के) व्यक्तियों को चोट पहुंचाए, उसका वह अंग ही काट डाला जाएगा, यह मनु का उपदेश है।’^{४१}

“वह जो हाथ या डंडा उठायेगा, उसका हाथ काट लिया जाएगा, वह, जो क्रोध में अपने पाव से ठोकरें मारेगा, उसका पाव काट लिया जाएगा।”^{४२}

‘एक निम्न वंश का मनुष्य, जो उच्च वंश के मनुष्य के स्थान पर अपने को पदस्थापित करने का प्रयत्न करता है उसके कूल्ह पर तपते लोहे से दाग दिया जाएगा और उसे वनवास दे दिया जाएगा अथवा राजा उसके गिर्तम्व पर गहरा धाव करने की व्यवस्था करेगा।’^{४३}

“यदि अह्वारवश वह (अपने से किसी वरीय पर) धूकता है, तो राजा उसके दोनों ही हाथों को कटवाने की व्यवस्था करेगा। यदि वह (उस पर) मूत्र-त्याग करता है तो उसका शिश्न, यदि (उसके समक्ष) वायु निस्सरण करता है, तो उसकी गुदा।”^{४४}

“यदि वह (किसी वरीय का) बेश पकड़ता है तो राजा को चाहिए कि वह पिना हिचक उसके हाथ कटवा ले, इसी प्रकार (यदि वह उसके) पाव छूकर घसीटे, तो उसकी दाढ़ी गरदन अथवा घड़कोश।”^{४५}

कृतिपय वर्णों के साथ व्यवहार

“परन्तु चाडाला और श्वपाना का निवासस्थान गाँव के बाहर होगा, वे अपपात्र होंगे और उनके घनम्बरूप कुत्ते और खच्चर ही होंगे।”^{४६}

‘उन्ने वस्त्र मृतकों की पोशाक होंगे, वे टूटी घाली में भोजन करेंगे, बाला लोहा ही उखा गहना होगा, और वे भावस्थक रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमते फिरते रहेंगे।’^{४७}

दूध धर्मोपदेश प्राप्त के अधिकारी नहीं

'एक दूध बोई एगो धराराय तड़ा करेगा जिगमे उसकी जाति धनी जाए (पातक) और पवित्र धमक्या का पाठ तड़ा मुग्गा उगे पवित्र विद्या के पावन का अधिकार तही है (पावों के मयावि) उसक लिए (इसके प्रतिपद्य धमा क पावन करन का) बोई नियष तड़ा है । *८

इसलिए दूध बो बोई परामग त सिदा जाए त ही उग नोग्य का उच्छिष्ट हो सिदा जाए त ही उग दयभोग का प्रगाद ही मिले, त उगने (एत मनुष्य क) समक्ष पवित्र विद्या की व्याख्या ही की जगा त (उस पर) सपस्या या प्रायश्चित्त करत का ही भार शाना जाए । *९

'बहु, जो किमी (दूध क लिए) पवित्र विद्या को व्याख्या करता है धयवा उगे सपस्या करत या प्रायश्चित्त करन को धाम्य करता है उस (दूध) के साथ समय भी असवृत (नामक) नर म द्यू जाएगा । *

दूध की हत्या करने के लिए प्रायश्चित्त या मुक्ति

'एक बिल्ली एक नवता एक पीनकठ प ती एक मेदक एक कुत्ता एक छिन्नवली एक उल्लू धयवा एक कौक का मारकर बोई भी एक दूध की हत्या के पाप का प्रायश्चित्त कर सनता है । *११

यह स्पष्ट है कि पूर्व-वर्षित विधियां राजगी ध्याय से पूज हैं यह भी प्रत्यक्ष है कि इनका निर्माण भूत व्यक्तियों द्वारा धन देणवतियों के अधिकांग को दास बनाने के स्वाधपूज उद्देश्य म किया गया था परंतु अधिकांग लोग ने इन विधियों क विरुद्ध विद्रोहक्या तही किया ? विद्रोह हुआ कभी सफल कभी विफल, धार्मिक और राजनीतिक गतिमा म परिवर्तन के साथ ही सृष्टि की बहानिया और विधिया म भी परिवर्तन हुए हैं । हम धर्मग्रंथ इस पर विस्तार पूर्वक विचार करेंगे । जाति-व्यवस्था की उत्पत्ति क सम्बन्ध म हम कुछ अध्यायुक्त प्राप्तिपनम सिद्धांत पर विचार करें ।

प्रजातिक अगम

सर हबट रिसले जाति-सम्बन्धी प्रजातिक मिद्वान्त के सर्वाधिक उन्मुक्त व्याख्याता रहे हैं । उन्होंने न-नस्व के सम्बन्ध म प्रचुर साधकाम किया है । उन्होंने प्रजातिक अणकल्पना क आधार पर अपनी पुरतक द पीपुल धाक इंडिया लिखी । प्रथम रिसले जानिया के निर्माण की प्रक्रिया का विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं । उनसे अनुगार माटे तौर पर छ विभिन्न प्रक्रियाएं हैं—(१) मूल निवासियों की एक सम्पूर्ण जनजाति, धमवा इनमे मे

अधिकारों अपने आपको हिंदू धर्म की श्रेणी में अपने ही वनजातीय पदनाम (उपाधि) अथवा नवीन जाति-नाम के अवीन प्रविष्ट करा लेते हैं, जिन्हें स्त्रीय जातियाँ से सुगमतापूर्वक विभेदीकृत किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, उत्तरी बंगाल के राजवंशी, मध्य भारत के गान् । (२) जाति के आर्थिक अथवा वृत्तिक इतने अधिक प्रकार हैं और इतना अधिक विस्तृत उनका फैलाव है तथा इनकी विशिष्टताएँ इतनी प्रमुख (महत्वपूर्ण) हैं कि प्रशय की सामुदायिकता का आचरण तथा जाति विकास का मुख्य कारक अव्यक्तित होनी है। मौलिक प्रेरणा चाहे जो भी कुछ रही हो, यह तो आन पयवेक्षण का विषय है कि न केवल प्रायः प्रत्येक जाति कहती है कि उसकी एक न एक या अनेक परम्परागत उपजीविका हैं, यद्यपि इसके कई सदस्यों ने उसका परित्याग भी कर दिया है, वरन् कई उपजीविकाओं का स्वीकार कर लेने अथवा मूल उपजीविका में परिवर्तन से भी जातियाँ के कई उपखंड हो सकती हैं जो अन्ततः एक बिलग प्रयत्न जाति के रूप में विकसित हो जाते हैं। (३) साम्प्रदायिक प्रकार में कुछ ही जातियाँ सम्मिलित हैं, जिन्हें लोकोपकारक समुदायों द्वारा प्रवर्तित एक धार्मिक सम्प्रदाय के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ किया। ये समुदायों वे थे, जिन्होंने जन्म के चक्र और मृत्यु के विधान से शीघ्रतापूर्वक मुक्ति प्रदान करने वाले कतिपय अध्यात्मवादी सूत्रों का उद्घोष करने के बाद वह यह समझाया कि संसार के सभी मनुष्य समान हैं अथवा किसी भी तरह इनके उपदेशों में विश्वास रखने वाले लोगों को तो एक समान होना ही चाहिए। (४) राष्ट्रीय प्रकार की जाति। कतिपय ऐसे समूह भी विद्यमान हैं जो सामाजिकता के वर्तमानकालिक जाति के रूप में अव्यक्तित हो रहे हैं और जो प्रतीतकालीन सम्प्रभुता की परम्परा को मानते हैं और एक साधारण वनजाति की अपेक्षा सभी अधिकतर रूप में एक संगठन की अनुरोधों (चिह्नों) को सुरक्षित रखते प्रतीत हो रहे हैं। (५) देशांतरगमन से निर्मित जाति—यदि किसी जाति के सदस्य अपना मूल निवासस्थान छोड़ दते हैं और भारत के किसी दूसरे भाग में जाकर बस जाते हैं तो उनमें मूल समूह से पृथक् हो जाने और एक पृथक् जाति के रूप में विकसित हो जाने की प्रवृत्ति होती है। (६) रीति में परिवर्तन से निर्मित जाति। प्रतिष्ठापित प्रथाओं की अवहेलना अथवा नवीन एवं प्रारम्भिक व्यवहारों तथा धर्म निरपेक्ष उपजीविका की स्वीकृति के परिणामस्वरूप नई जातियाँ का निर्माण प्राचीनतम काल से ही जाति-व्यवस्था की एक परिवर्तित घटना है। १२

ऊपर उद्धृत कथिका में, रिसले स्पष्टतः जातियों की परम्परागत उत्पत्ति

घोर मनु द्वारा प्रतिपादित मिश्रित जातियाँ की धालीबना करी या प्रदान करते हैं। प्रत्यन्त रिंगने प्रजाति-समूह की विधि का अनुमोदन करते हैं। 'सत्कार के इतिहास में जहाँ कहीं भी एक जनसमूह ने दूसरे जातिसमूह को अपनाया चाहे मध्यम अथवा उच्च समाधिभार को धारे घोर धर्मधारण करने पूणाया परास्त कर लिया है वहाँ विहित देव की महिमाया को विद्वताया ने रंगिता अथवा परतो के रूप में ग्रहण कर लिया है परन्तु अपनी पुत्रियों का विवाह अपना ही शीघ्र में किया है। जहाँ ये लोग जातिसमूह एक ही प्रजाति के रहे हैं अथवा किसी भी प्रकार एक ही धर्म के रहें हैं, वहाँ उनके शीघ्र अनुसोम विवाह की प्रारम्भिक अवस्था शीघ्र ही समाप्त हो गई है और सम्पूर्ण सम्भोजन हो गया है। दूसरी ओर, जहाँ प्रजाति घोर का सम्बन्ध का सशुभीय भेद ने हस्तगत किया है और विशेषतः यदि प्रायः जातिसमूह अपना ही धर्म के व्यक्तिमा द्वारा अन्तर धर्मधारण विधे जाने रहे हैं वहाँ उद्भिदास का क्रम भिन्न सीक पर होता है। तब प्रवृत्ति सवरो के एक भिन्न धर्म—उच्चतर कुल के पुरुष और नीचतर कुल की स्त्रियों के बीच घटित अनियमित यौन सम्पर्कों के परिणाम के निर्माण की घोर उद्युक्त होती है जो समाज में ही विवाह करते हैं और प्रायः सभी अभिप्राया और उद्देश्यों के निमित्त एक ही जाति में ही जाते हैं। इस धार्मिक एवं दार्शनिक धर्म के जाति केवल भारत तक ही सीमित नहीं है। यह अमरीकी गणराज्य के दक्षिणी राज्या में भी अति स्पष्ट रूप में विद्यमान है जहाँ नीचो और विभिन्न मिश्रित प्रजातियों मुसाटोज, क्वाड्रूस और क्वॉट्रूस प्रत्येक के बीच अपने अपने अन्तर्विवाह धर्मधारण उच्च रूप में धार्मिक हैं और विनिवृत्त ये धर्म प्रजाति से अधिक विवाह करने से निवृत्त बचते हैं। कनाडा में क्वॉट्रूस और दक्षिण अमरीका के सकर-जातो में और भारत में यूरोपियना में भी यही सामान्य वृत्त-कुल पर्यवेणित विद्या जा सक्ता है। जो देशजों के साथ अन्तर्विवाह नहीं करते और गुदरकती यूरोपियना से केवल यथा कदा ही विवाह-सम्बन्ध स्थापित करते हैं।^{२३} अतः परं, भारत की सन् १९०१ की जनगणना में पर्याप्त मानव द्वितीय शोध करने के पश्चात् रिमले लिखते हैं जाति विद्या का धार्मिक विधान इस भाषा में विभिन्न पारोरिक प्रकारों को उनकी प्रभिन्न विनिवृत्ताया के प्रसंग में परिभाषित एवं वर्गीकृत करने का प्रयत्न करना है कि जब पर्याप्त शक्ति एकत्रित हो जाएँगे तब कुछ मात्रा में प्रकारों के धारे में ही लेला-ओया तयार करना और उनकी रचना के विभिन्न तत्त्वों को प्रतिनिधित्व करना प्रायः सम्भव हो जाएगा और इस प्रकार मानव-जाति के

महान् परिवारों के स एव या दूसरे से उनके सम्बन्ध को स्थापित किया जा सकेगा।" ५५ इस सम्भावनाओं, जाति विद्या-सम्बन्धी अध्ययन और मानव मित्तीय शोध के आधार पर रिसले अपने बक्तव्य के साथ प्रकट होते हैं—

पूर्वी भारत में जाति-संगठन की विधि को निर्धारित करना स्वल्पत ही एक विरोधाभास है कि एक मनुष्य की स्थिति उसकी नासिका की चोडाई के विपरीत अनुपात में परिवर्तित होती रहती है। ५५ इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए रिसले ने उत्तर भारत का जातियों के लोगों के माप आदि लिये थे।

सेनाट का सिद्धान्त

सेनाट के अनुसार, "जातियाँ प्राचीन आर्यों की उन सस्याओं के सामान्य सहज विकसित रूप हैं जो भारत की विविध अवस्थाओं के कारण विचित्र प्रकार ग्रहण करते चले गए। जाति-व्यवस्था के प्रारम्भ को वण-विभाजन के रूप में इतिहास का भारतीय ईरानी अवधि के साथ अभिभाजित करना कठिन नहीं है, क्योंकि समाज का चार भागों में बँटा होना अविस्तारी पण्डिया और श्रुवदिव भारत में भी पाया जाता है। इस प्रकार प्राचीन पण्डिया में अथर्वा (पुरोहित), रथेय्या (यादवा) और हुईती (बारीगर) थे। एकमात्र प्रमुख अन्तर चतुय वण के सम्बन्ध में ही पडता है, जो पण्डिया में काटीगर-वण था वहीं भारत में दास अथवा दूद्र वण था। परन्तु यह अन्तर वस्तुस्थिति की अपेक्षा अधिकतर प्रकट या स्पष्ट है, यदि हम लोग इस तथ्य पर विचार करें कि हस्तशिल्प का कार्य भारत में दासा अथवा दूद्रों के लिए ही अधिकारित नियत था। भारतीय प्रणाली और पूर्वकालीन यूनानी और रोमन सस्याओं के बीच सादृश्यता के निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखकर निर्देश करते हैं। जैस, सेरिया, वनजानि रोम में, परिवार, फट्टिया फाईल यूनान में, और परिवार गोत्र और जाति भारत में। "गोत्र का तात्पर्य एक सस्यानुवर्ती अथवा सस्यानुवर्ती नामधारी समूह से है, जो अपनी सम्पूर्णता में एक समान पूवज से वंशानुक्रमित होने के लिए स्थापित है और यह पूवज उपयुक्त एक श्रुति, एक पुराण-पुरोहित अथवा एक साधु ही होना चाहिए। रोमन कभी भी अपने ही जैस की स्त्री से विवाह नहीं करते थे और रोमन कुलीन की भारतीय ब्राह्मणों की भाँति ही अनुलोम विवाह का अधिकार था, जिसका उन्मूलन रेकम वैन्युलिया द्वारा दीध सधप के परचाद ही सम्भव हो सके। मिश्रित विवाह से उत्पन्न सन्तति को पवित्र कुलीन वंश की अपेक्षा निम्न स्थान का अधिकारी माना जाता था। जैस के यज्ञ में अवरिचिता का प्रवेश

निषिद्ध था। विवाह व सभार पर स्त्रियों का अपने गोत्र के विनाशक गति के गोत्र में घनरित हो जाने का भारतीय प्रथा का समाजांतर हम रामा का अर्द्धरंगिया में मिल पाता है। विवाह व प्रसंग में उपनिषदा समूह की प्रणाली का भारतीय मात्र पद्धति में आत्म-भोग्य समानता है और एक कद्रिया की सम्पत्ता का परिवार व सम्पत्ता ही सीमित थी जिनसे समूह का था वहाँ तक कि अपरिचितता व साथ भाजा करने पर भी प्रतिषेध था। पारिवारिक भोजन पवित्र समझा जाता था और रोमन परिस्थिति से बेचन अपरिचित हा नहीं करने परिवार के वे सम्पत्ति भी बहिष्कृत थे जो किसी अनुपयुक्त आचरण व द्वारा अपने आपको त्याग भ्रष्ट कर चुके थे।

भारतीय समाज में जिस प्रकार दुष्कृपा पानी बन्द करने का रिवाज है कुछ इसी प्रकार की प्रथा रोमन समाज में थी। इतना ही नहीं बल्कि भारतीय पञ्चायत-पद्धति की तरह राम में पारिवारिक परिपक्व, पैट्रिया पीटेस्टम और 'जेम' व प्रधान मा मूणिया हुआ करते थे जिनको पारिवारिक या साम्प्रदायिक मामला में प्रगल्हा देने का अधिकार होता था। उनका इस अधिकार को राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त थी।^{२६} इन तथ्यों के आधार पर सेनाट ने निष्पत्ति निराला है कि जाति-व्यवस्था व प्रमुग सिद्धांत और सधन धाय प्रजाति की सभी शाखाओं में परम्परा और रीति रिवाज व रूप में विद्यमान हैं।

सेनाट के विचारों से सहमत होता पाटिा है। व बहिर्जातीय विवाह के सिद्धांत को भारतीय जाति-व्यवस्था का मुख्य आधार माना है। अपने मा की पुष्टि में उन्होंने कुछ ऐतिहासिक उदाहरण लिये हैं। परन्तु इन उदाहरणों से जाति-व्यवस्था की उत्पत्ति पर रोगनी नहीं पड़ती। वास्तव में यह व्यवस्था ब्राह्मण युग व परवर्ती-काल की उत्पत्ति है। उसके बड़ा दिना वा, सुन-युग में, इनके नियमों को लोग फिर-नए मानने लगे। इसका पहला अंतरजातीय विवाह रूप प्रचलित था। अदिक् युग के प्रारम्भिक दिना में छोटी जाति के स्पर्श में अपवित्र हो जाने की बात अल्पनीय थी। अंतरजातीय भोजन निषेध का भी चलन नहीं था। सेनाट यह भी नहीं बतला पाते कि निम्नतम जाति, अथात् दूता की उत्पत्ति किस प्रकार हुई। हम जाना यह पहना नहीं मान सकते कि य वग (ब्राह्मण, क्षत्रिय, व य और दूत) अत्यंत प्राचीनकाल से चले आते हैं और वेबल परवर्ती काल में ही इनकी अलग अलग जातियाँ बन गई, और इन जातियों का मूल स्रोत और सधन प्रारम्भ ही से उठने बीच विद्यमान था।^{२७} अस्तु, इस विषय पर हम आगे चलकर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

इवेट्सन और नेसफिल्ड के सिद्धांत

इवेट्सन के अनुसार जाति एक दृढ़ सामाजिक बग से कुछ ग्रथों में विलग है। यह मत निगमनात्मक प्रतीत होता है। इवेट्सन के ग्रथ से जाति व्यवस्था का प्रारम्भिक इतिहास समझने में सहायता नहीं मिलती। उन्होंने सभी प्रकार के समाज के लिए सामाजिक अंतर अथवा विलगाव सम्बन्धी कुछ सिद्धांत प्रतिपादित किये हैं और हिन्दू समाज को एक विशेष घटना के रूप में माना है। उनकी अपेक्षा कहीं अधिक सुस्पष्ट और विकसित सिद्धांत नेसफिल्ड ने प्रस्तुत किया है। उन्होंने सस्कृति या पेशे के आधार पर जाति-व्यवस्था का विवेचन किया है। वे प्रजाति-सम्बन्धी सिद्धांत को नहीं मानते क्योंकि उनका कहना है कि जाति व्यवस्था सगठित होने के पहले ही जनसंख्या बुरी तरह से मिश्रित हो गई थी। 'इस दश में आर्यों के आने के हजारों वर्षों बाद ही जाति-सम्बन्धी वैवाहिक प्रतिबंध लागू हुए और इस समय तक आर्यों और भारत के मूल निवासियों के बीच रक्त सम्मिश्रण हो चुका था। ईसापूर्व २०० वर्षों या उससे भी अधिक दिनों बाद, मनु के समय में विवाह के सम्बन्ध में जाति सम्बन्धी नियम लागू होने लगे थे। उस समय भी, जसा कि मनु के लेख से प्रकट है, स्वयं ब्राह्मण भी उन नियमों का सख्दा पालन नहीं करते थे। मनु ने गूढ़ या छोटी जातियों की स्त्री से विवाह करने वाले अपने समकालीन ब्राह्मणों की बड़ी भत्सना की है, जिससे प्रकट है कि मनु के पहले, अर्थात् जब से आय आक्रमणकारियों ने भारत में प्रवेश किया (जो निश्चय ही 'मनुस्मृति' की रचना से लगभग १००० वर्षों आगे की बात है) ब्राह्मण या पेशेवर पुरोहित (क्याकि उन दिनों ब्राह्मण जाति का अस्तित्व नहीं था) अपनी पसन्द की किसी भी स्त्री से विवाह कर सकते थे।" १८ नेसफिल्ड का मत है कि प्रारम्भ में पुरोहिताई पर ब्राह्मणों का कोई एकाधिकार नहीं था। मनु के अवसर पर धार्मिक या युद्धनायक भी पुरोहित का काम कर सकते थे। परन्तु बहुत दिनों बाद, मात्रा और धार्मिक कृत्यों के कारण मनु का बहुत ही कठिन और पचीदा हो गया, और उसमें विधिपीठिकरण की आवश्यकता उत्पन्न हो गई। जिन लोगों ने इस पेशे में विशेष कुशलता प्राप्त कर ली थी, वे ब्राह्मण हो गए। उन दिनों के सामाजिक जीवन में मनु का बहुत महत्त्व था। इसलिए समाज में ब्राह्मणों को सर्वाधिक महत्त्व और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। आगे चलकर पुरोहिताई वगानुगत होने लगी। ब्राह्मणों ने अपने को विशेष अधिकारों से युक्त एक अलग जाति के रूप में सगठित कर लिया। यह देखकर अन्य वर्गों के लोगों ने भी आत्मरक्षा के लिए अथवा अपने अधिकारों को बचाने के लिए अपने को अलग अलग जातियों में

संगठित किया। ऐसा करने में कुछ तो प्रतिरक्षा की भावना की घोर कुछ अनुकरण की। 'जब ब्राह्मणों ने अपने को अपने अधिकांश में मुकाबल विविध जाति के रूप में संगठित कर लिया तब उनको ऐसा-ऐसी धारण के लोग भी अधिकाधिक अधिकांश हथियार प्रयोग करने की शायद हुए। उन्होंने बेवस आत्मरक्षा के ही लिए ऐसा कहा किया बल्कि यथा करते में वे उम्र के लोग के लोगों का अनुकरण कर रहे थे जिन्होंने प्रति के कुछ शक्तियों से आरंभ घोर सम्मान प्रर्णित करने के अभ्यस्त हो चुके थे। परिणामी यूरॉप के रोमन कथोलिक पुरोहितों की तरह यन् ब्राह्मणों में भी अधिकांश रहने की प्रथा रहती, तो जाति की दीवार गढ़ी करके जो आदेश उन्हीं उपस्थित किया उसका समाज के बीच पर गामद बोर्ड अंतर नहीं पड़ता *६ सभ्यता में, नेसफिल्ड का कहना है कि 'जाति में रखना प्रथा नहीं बल्कि बम का प्रदान है।'

नेसफिल्ड की बहनेरी स्थापनाएँ गलत हैं। यह ठीक नहीं ज्ञान कि जाति व्यवस्था इतने परवर्ती युग में उत्पन्न हुई। नेसफिल्ड ने यथा की अटिक्तता का प्रदान उठाया है। परन्तु यथा यथा इतने अटिक्त हो गए? इससे लिए यौन-के लोग उत्तरदायी हैं? यदि कहें कि आत्मरक्षा में आधार पर जाति व्यवस्था का विकास हुआ तो यह भी सही नहीं होगा, क्योंकि तब यथा घोर युग की जाति नहीं बन पाती।

इस व्यवस्था की उत्पत्ति घोर विकास का सविचार विन्वेषण करते समय हम नेसफिल्ड के मत का पुनः उल्लेख करेंगे।

जाति का जन जातीय आधार

कुछ विद्वान् मानते हैं कि जन-जातीय प्रवृत्तियों का कारण जाति-व्यवस्था का विकास हुआ। इस मत की पुष्टि उन्हें वेस्टरमार्क का निम्नलिखित विचार से होती है

'जगत्ती लोग अपने-अपने जन-जातियों या कब्रों में बंटे रहने हैं और उनके बीच परस्पर क्रूर घणा की भावना रहती है। ये आपस में गौरी विवाह नहीं करते। भाषाएँ उनकी एक ही मूल से भले निकली हुई हो, उनके बीच इतना अलग-अलग रहता है कि महज एक पतनी-सी नदी या कोई छोटी पहाड़ी भटल विभाजन रेखा बनकर उन्हें बिरबाल के लिए आपस में मिलने नहीं देती।'

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रतीत होता है कि जब आर्यजन जन जातीय व्यवस्था में थे, तभी जाति-व्यवस्था का विकास हुआ। लेकिन आपस के प्राचीनतम

साहित्य, ऋग्वेद में, पुरष-मूक्त को छोड़कर, जोकि परवर्ती काल की रचना माना जाता है, वही भी जाति-व्यवस्था का काइ चिह्न नहीं मिलता। यदि जनजातीय स्रोत में जाति-व्यवस्था का उद्भव हुआ रहता तो निश्चय ही अणु, क्रीवा, यदु, मृजय आदि जन-जातीय नाम इस व्यवस्था में भी अवश्य पाए जाते।

जो लोग जनजातीय आधारधाले सिद्धांत को मानने वाले हैं, उनका विचार है कि इस व्यवस्था के विकास में आर्यों की अपला आदिवासियों का अधिक हाथ था। जिन आदिवासियों ने आपत्त स्वीकार नहीं किया, उनमें पशु चिह्न आधारित वैहिर्जातीय विवाह और जन-जातिगत अन्तरजातीय विवाह का प्रया विरोध रूप से प्रचलित थी। उस सम्बन्ध में विद्वानों का कहना है कि 'आर्यों की विजय के बाद भी भारत के आदिवासियों ने अपने पारस्परिक साम्प्रतिक विभेदों को नहीं भुलाया। ये सामाजिक विभेद ही आगे चलकर जातिभेद के कारण बन गए। सचमुच यह आश्चर्य की बात है कि उत्तर भारत में, जहाँ आर्यों का प्रभाव सबसे अधिक है, द्रूत अद्रूत का भेद उतना प्रबल नहीं है, जितना कि दक्षिण भारत के द्राविडों में। जाति-सम्बन्धी नियमों की पाबंदी दक्षिण भारत के ब्राह्मणों और अत्राह्मणों के बीच ही नहीं है बल्कि विभिन्न अत्राह्मण मन्त्रदायों के बीच भी है।' इस विषय पर दूसरा भी एक मत है कि भारत के लोग प्रजातीय दृष्टि से मुख्यतः द्राविड और मुंडा हैं। इसलिए द्राविड और मुंडा आदि प्रजातियों का हिन्दू सस्कृति और सामाजिक संगठन पर गहरा असर है। क्रीट द्वीप की प्राग्गुनी सभ्यता के अवशेषों की अत्याधुनिक छानबीन से भी उपयुक्त मत की पुष्टि होती है। परन्तु यह पता नहीं चलता कि 'किस प्रकार भारतीय आर्यों ने जाति-व्यवस्था, पुनर्जन्म, कर्मवाद, मायावाद आदि सिद्धांतों के आधार पर अपनी विविध सस्कृति का विकास किया। क्याकि यूरोप या एशिया, वही भी आर्यों की अथ गालाओं में ये गुण नहीं पाए जाते।' १२

यद्यपि उर तथा अथ प्राचीन शहरों की सुमेर सभ्यता के विषय में हमारी जानकारी बढ रही है। कहा जाता है कि सुमेर और द्राविड एक ही प्रजाति के लोग थे। अथ यह भी अनुमान किया जाता है कि सुसभ्य द्राविडों ने आर्यों से युद्ध में परास्त होकर भी कालक्रम से उनसे ऊपर सांस्कृतिक विजय पाई। स्टेडर ने अपनी पुस्तक 'द डेवोडियन एलिमेण्ट इन इंडियन कल्चर' में लिखा है कि जाति-व्यवस्था मूलतः द्राविड सस्कृति की उपज है, जिसे अध-सभ्य आर्यों ने अपना लिया। अपनी पुस्तक 'एशियन इतिहास हिस्टोरिकल ट्रेडींग' में पार्जोटर ने लिखा है कि द्राविडों में आर्यों के पुरोहित बन गए,

जिससे जाति-प्राप्त्यन ज्ञानि वा मन् ।

ये सब बड़ी भारपक और भारजनक कल्याण हैं किन्तु इनमें कोई बात सत्य नहीं हो पाती । सिन्धु घाटी में प्राप्त पुरातात्विक प्रमाणों से स्पष्ट निश्चय होता है कि द्वाविट और गुमेर एक ही थे । दूसरी विचारणीय बात यह है कि भाषों के घाते से पहले भारत की कहीं दशा थी, इसका हम बहुत विवेकपूर्ण ज्ञान नहीं है ।

भोज का वर्ण सिद्धांत

समाज के विभिन्न नतिव स्तरों का लेकर डॉ० गौतम धरम एच० मोड ने जाति-व्यवस्था के विषय में एक बड़ा सिद्धांत प्रस्तुत किया है । ये निश्चय हैं, 'नया पूर्व तथा पश्चिम—सबसे प्रारम्भ में योग्यता और सम्यक्ता के आधार पर जाति या वर्ण भेद प्रचलित थे । आगे चलकर दलों भेद का धानुषिक और धार्मिक रूप हो गया ।' उनसे मतानुसार मानव-समाज में मनुष्य का स्वाभाविक और उचित स्थान उसका वर्ण द्वारा निर्धारित होता है । उनका कहना है कि वर्ण द्वारा लोगों की सामाजिक उपयोगिता जान होती है । कारणों वशों से पता चलता है कि समाज में कौन-सा लोग सर्वाधिक सामाजिक प्राणी थे और कौन-से अत्यन्त असामाजिक । स्वयं गुणमय समाज में वर्ण और वर्ण में कोई भेद नहीं होता ।^{१४}

डॉ० मोड ने वर्ण-व्यवस्था की भूरि भूरि प्रशंसा की है । परन्तु वर्ण का क्या तात्पर्य है ? क्या उसमें छोटे-बड़े सामाजिक घोटने का बोध होता है ? या कि उसे हम सामाजिक मन-कारित्वक समूह मानें ? यदि गुणों के आधार पर सामाजिक वर्णों का संघटन सम्भव है तब प्रश्न उठता है कि क्या इन तरह की बात कभी भारत में थी भी ? इन प्रश्नों की सहाई के लिए हम मनु के 'मानव धर्मशास्त्र' की सहायता लेना चाहिए । उसमें जान होता है कि सामाजिक दर्जे पद-रथोहार या धार्मिक नियमों के आधार पर बनते थे, कि चरित्र के आधार पर । यह ठीक है कि मनुष्य के व्यक्तिगत गुण या धर्मगुण से समाज में उसका स्थान तय होता है फिर भी यह भावदशा नहीं कि किसी सामाजिक वर्ण में जितने भी व्यक्ति शामिल हों उन सबमें एक ही तरह के गुण पाए जाएं । सामाजिक स्तर भेद में मनुष्य के व्यक्तिगत चरित्र या विश्वास का कभी कोई महत्त्व नहीं रहा है ।^{१५}

रंग

"वर्ण व्यवस्था का एक कारण रंग भेद भी था, क्योंकि वर्ण का अर्थ ही

होता है रग ।' ६६ इस मूल को भी सवाशत स्वीकार करना कठिन है । वण शब्द के कितने ही अर्थ होते हैं, जस बाह्यादृति, रग, जाति, प्रकार-भेद, आदि । मनु ने वण का प्रयोग जाति के अर्थ में किया है । श्री ए० के० दत्त और श्री जी० एस० धुर्वे जमे भारतीय विद्वाना न रग भेद वाले सिद्धांत का एक प्रकार से स्वीकार भी कर लिया है । परन्तु उन्होने ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं दिया है जिससे पता चले कि श्वेत रग वाले आर्यों और काले रग वाले द्राविडों में शत्रुता थी । दूसरे क्या प्रमाण है कि आय श्वेत थे ? क्या कि आर्यों के देवता राम और कृष्ण, मेघ श्याम रग के माने गए ह । अस्तु इस विषय की चर्चा हम आगे करेंगे ।

सिद्धांतों का मूल्यांकन

हिंदू जाति-व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित सिद्धांतों का यथासम्भव सक्षिप्त वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं । इनमें से किसी भी सिद्धान्त को समस्या के समाधान की एकमात्र कुंजी नहीं समझना चाहिए । जांच करने पर कोई भी सिद्धांत खरा नहीं उतरता । ऐसी दशा में हम क्या करें ? क्या हम सभी सिद्धान्तों को जोड़ दें ?—और तब, क्या जाति-व्यवस्था के कारणों का पता लग जाएगा ? इस प्रणाली को अपनाने से वस्तुतः कोई लाभ नहीं । हिंदू जाति-व्यवस्था अनेक प्रकार के तत्त्वों के संयोग से बनी है और इस प्रकार बहुत ही जटिल और सखिलपट हो गई है । इतिहास क्रम से भारत पर अनेक आक्रमण हुए और कितनी ही प्रजातियां यहाँ आईं । विभिन्न युगों में विभिन्न प्रकार की संस्थाएँ बनीं, तरह-तरह की सरकारें बनीं और इन सबकी छाप भारतीय समाज पर पड़ी है । इसलिए इन तमाम बातों का विश्लेषण करना होगा और तब इस व्यवस्था की विशेषताओं की व्याख्या करनी होगी । भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों का अध्ययन करके पता लगाना पड़ेगा कि प्रत्येक युग में जाति-व्यवस्था किस रूप में थी । अब तक इस प्रश्न का जो कुछ भी अध्ययन हुआ है उसमें युगों की परिस्थितियों को पृथक् छोड़ दिया गया है । विद्वानों ने साधारणतः कौटिल्य के अरणास्य, मनु के 'मानव धर्मशास्त्र', याज्ञवल्क्य की 'स्मृति' आदि ग्रंथों पर तो विचार किया है, परन्तु जिन तत्त्वों के आचार पर इन ग्रंथों के निष्कर्ष स्थापित हैं उनकी धारणा ध्यान ही नहीं दिया है । ये ग्रंथ तो महज घटनाओं के समान हैं और जब तक घटनाओं की प्रक्रिया का विवेचन नहीं किया जाता, तब तक घटनाएँ अर्थहीन रहती हैं । घटनाएँ वस्तुतः तिथियुद्ध रहती हैं और एक दिन पुरानी पड़ जाती हैं । दूसरी ओर ऐतिहासिक प्रक्रिया अन्ततः सज्जित

है जो संस्कृत के 'वि' स मिलता-जुलता है। परन्तु हिन्दू समाज में वश्य वण के लोग द्विज थे। सम्भव है कि प्रारम्भ में वश्य गण वृषि-नाय किया करते हों, परन्तु आगे चलकर वे नीचे गिर गए।

अब प्रश्न उठता है कि दूध कौन थे। प्राच्य विद्या के यूरोपीय विद्वान् ऐसा मानते हैं कि दूध भारत के मूल निवासी थे। वे काल रंग के थे। उन्हें पराजित करके श्वेत रंग वाले आर्यों ने गुलाम बना लिया। यह सिद्धांत सर्वांगत अनुमान पर आधारित है। क्या प्रमाण है कि मूल आर्य गौर वण थे? वंश में आर्य वण और दास वण का वणन है। आर्य पंच प्रथा में भी चार वर्णों का उल्लेख हुआ है जिनमें चार सामाजिक वर्णों का बोध होना है परन्तु क्या प्रमाण है कि वण का अर्थ रंग ही था। जमा कि चूमन चाक ने बताया है 'हम मानना पड़ेगा कि प्राचीन काल में पंजाब में चारों प्रजाति के लोग रहा करते थे अर्थात् बुद्ध लोग गौर प्रजाति (कानैरियन) के थे बुद्ध लोहित प्रजाति (अमरीकी आदिवासी), बुद्ध पात प्रजाति (मंगोल) और बुद्ध वृष्ण प्रजाति (होमा) के लोग थे। यदि गौर वण ब्राह्मण भारतीय-यूरोपीय गौर प्रजाति के लोग थे और कृष्ण वण वाले दूध थे तब लाल रंग वाले क्षत्रिय और पीले रंग वाले वंश का क्या होगा?' यह सिद्धांत स्पष्टतः असम्भव है। हिन्दू धर्मग्रन्थों में वण भेद को रूपक माना है, जो एक हृदय तक विश्वासप्रद प्रतीत होता है। यथा भृगु ने उत्तर दिया परमात्मा न मानव सृष्टि की रचना की, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और दूध तथा अर्य वर्णों का निर्माण किया। ब्राह्मणों का रंग गौर था क्षत्रियों का लाल अर्यों का पीला और दूधों का काला।' इस पर भारद्वाज ने कहा 'यदि चारों वर्णों का जाति भेद उनके रंग के आधार पर किया जायगा तब सभी जातियों में विश्वासलता दोष पड़गी। भृगु ने उत्तर दिया, 'जानियामें कोई भेद नहीं। इस सृष्टि की रचना ब्रह्मा ने की और प्रारम्भ में सभी लोग ब्राह्मण थे। आगे चलकर वे नाम अपने अपने काम के अनुसार बड़े जातियों में बँट गए। जिन ब्राह्मणों को भोग विलास प्रिय था जिनकी प्रकृति हिंसालु और शोचस्वी थी, जिन्होंने अपना वतव्य छोड़ दिया था और जिनका शरीर रक्त वण का था वे सब क्षत्रिय कहलाए। जो ब्राह्मण पशु पालते थे, खनी करके अपना खजाना-यापन करते थे जिनका रंग पीला था और जिन्होंने अपने वतव्य का पालन छोड़ दिया था वे वैश्य बने। जो ब्राह्मण झूठ बोलते थे, लालची थे, सभी तरह के काम किया करते थे, दुष्टता में रत थे और अपवित्र तथा काले रंग के थे वे दूध हुए। इस प्रकार अपने अपने काम के अनुसार ब्राह्मण लोग

जाति-यवस्था का उन्मूलन और विकास

विभिन्न जातियाँ म बँटे, परन्तु यन करने का अधिकार और बतव्य उनम से किसी के लिए भी सबदा बर्जित नहीं हुआ।" ७१ इस प्रकार की अनेक व्याख्याएँ हैं। पुरोहित का सम्बन्ध धार्मिक कृत्या से था। इसलिए वे पवित्रता के प्रतीक माने जाते थे। उनका वण गौर बताया गया है। मेवा राय म गदगी का सस्य रहता है, इसलिए दास गूदा का रग काला माना गया है। आय देवताओं का गौर वण दरअसल रूपकोक्ति है। वही कोई प्रमाण नहीं है कि वैदिक आय समजातीय समूह के लोग थे। वन्तेरे वैदिक सृष्टियों तथा अरूनों का रग काला था। इन सबके बावजूद जो लोग प्रजातीय दृष्टिकोण से इन समस्या का विवेचन करते हैं, उन्हें सम्भव उत्तर अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों के वर्तमान प्रजाति सघप में प्रेरणा मिलती है। ऐसे विषया पर अस्पष्ट सादृश्य बहूवा भ्रामक होता है। उत्तर यूरोप अथवा किसी दूसरे ही उत्तरी क्षेत्र से नौडों अथान् आदि, आयों ने भारत पर आक्रमण किया और यहाँ के वृष्णवण मूल निवासिया से उनका सघप द्विडा, जिसके फास्वल्प के त्वचा के रग के आधार पर कई स्तरा म बँट गए। यह सिद्धान्त भी बहुत बडी पूरावत्तिक (मिथिकल) स्थापना है। कुछ लोगा का विचार है कि मून निवासिया म जिस परिमाण मे आय रक्त का सम्मिश्रण हुआ, उसी के अनुसार भारतीय समान-व्यवस्था म ऊँचा या नीचा स्थान प्राप्त हुआ। इस सिद्धांत को माननेवाले लोग उत्तर अमेरिका के वणमकरा का उदाहरण देते हैं। परन्तु वे सायद भूल जाते हैं कि उत्तर अमेरिका के श्वेतागा और वृष्णागा के सम्मिश्रण से जो जानियाँ उत्पन्न हुई हैं उनके आधार पर सामाजिक स्तरा का निर्माण नहीं हुआ है। "गुद रक्त वाले हल्की या काडून या भौसट्टन जने मिश्रित जाति के लोग केवल अपनी ही जाति के अन्दर शादी ब्याह करते हैं, ऐसी बात नहीं। बल्कि इन मयकी एक मिली-जुली 'रगोन जाति' है जो श्वेतागा समाज द्वारा बहिष्कृत है। ७२ रिजले का कहना है कि जिस जाति म आय रक्त जितनी मात्रा म है, उसके बिलोम-श्म म उस जानि की सामाजिक स्थिति निर्धारित है। यदि रिजले का यह सिद्धान्त ठीक है तब क्याकर एशिया के मुवाबले जाट लाग नीची श्रेणी के माने जाते हैं, और दक्षिण भारत म ब्राह्मण जाति के सम्बन्धी लोगों का सिर क्याकर पतला और लम्बा है और बयोंकर ब्राह्मणों का सिर चौडा ? पुनश्च मद्रास शहर के ब्राह्मणों की तुलना म बनड के मरुवा की नाक क्याकर पतली है ? इसके स्पष्ट है कि रिजले का सिद्धांत मानव गान्ध द्वारा प्रमाणित नहीं है। रिजले

का मत है कि किसी भी जाति का सामाजिक दर्जा उसकी नासिका-सूचक अंक के विलोम क्रम में रहता है। यह भी सही नहीं।^३

उदाहरणों से समस्या का समाधान नहा होता है, फिर भी यदि हम हिंदुओं के वग भेद जैसी व्यवस्था वही ढूँढना चाहें तो वह यूनान, रोम तथा मध्यकालीन जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैंड के इतिहास में मिल सकती है न कि उत्तरी अमेरिका के भुतेटो और वाडून समाज में। यूनान का समाज सामन्तवादी था, परन्तु उसमें जन-जातीय सामाजिक संगठन के अनेक लक्षण थे। वहाँ का राजा एक साथ ही कर्मायली नेता और पुरोहित होता था। उसके नीचे अभिजात सामन्ता का दल था। उनके नीचे एथेस के थटा या स्पार्टा के पेरीकाई और हेलोट (रयता) का वर्ग था। उनके भी नीचे दासा का वर्ग था। परन्तु मानवशास्त्र की दृष्टि से उन लोगों में कोई विशेष अन्तर नहीं था। पेरीकाई और हेलोट हारे हुए लोग थे। उनके राजनीतिक आशा के अनुसार ही उनका सामाजिक दर्जा तय हुआ था। रोमन साम्राज्य के आरम्भ में भी यही बात दर्शन को मिलती है। हिंदू समाज का भी प्रायः उसी ढंग पर विवास हुआ। यहाँ आर्थिक हैसियत के आधार पर लोगों की राजनीतिक हैसियत निर्धारित होने लगी। यूनान में राजतंत्र का अन्त हो जाने पर राजनीतिक अधिकार अभिजात वर्ग के हाथ में आ गया। उस वर्ग के लोगों ने शासन के अधिकारों के अलावा पुराहिताई के अधिकारों को भी अपने ही हाथ में रखने की कोशिश की। इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज ज्यों-ज्यों जनजातीय अवस्था से सामन्तवादी अवस्था की ओर बढ़ता है त्यों-त्यों सामाजिक अन्तर और असमानता का भार निम्न और अपेक्षाकृत गरीब वर्गों के कंधों पर पड़ता है। यूनान में जब सामन्तवादी व्यवस्था पूर्ण रूप से कायम हो गई तब विभिन्न वर्गों के बीच समान स्तर पर शान्ति-व्याह की बात नापसन्द की जाने लगी और अन्त में विलकुल रोक दी गई। रोमन समाज को भी कुछ इसी प्रकार के दौर से गुजरना पड़ा। रोमवाले समझते थे कि प्लेबियनों (निम्न स्तर के लोग जनसाधारण) के साथ विवाह करने से उनका रक्त अशुद्ध हो जाएगा और उनके द्वारा अर्पित अर्घ्य देवताओं को स्वीकार नहीं होगा (देखिये मनु का धर्मशास्त्र)। भारत में भी अनुलोम विवाह की अनुमति थी, परन्तु प्रतिलोम विवाह सर्वथा वर्जित था।

मध्यकालीन यूरोपीय समाज में सबत्र तीन-चार वर्ग के लोग थे और उनमें सबगन्निमान् राजा से लेकर रयत और गुलाम तक सबकी सामाजिक स्थिति

जाति व्यवस्था वा उन्मूलन और विकास

और राजनीतिक अधिकार बँटे हुए थे। इन सब विभेदों के बावजूद, वे सब-के-सब श्वेत अथवा गोरे प्रजाति के लोग थे। इसलिए अचरज की बात लगती है कि यूरोपीय विद्वान् प्रजाति-संघर्ष के दृष्टिकोण से हिन्दू जाति-व्यवस्था का विद्वेषण करते समय प्राचीन और मध्ययुगीन यूरोप के इतिहास की वे बातें भूल जाते हैं। यूरोप का यह इतिहास अतदिग्ध रूप से प्रमाणित करता है कि एक जन-जाति द्वारा दूसरी जन-जाति के पराजित हो जान पर यह आश्चर्यक नहीं कि उनके बीच सामाजिक अन्तर की दीवार भी खड़ी हो जाए। बल्कि बहुत-सी जगहों में देखा गया है कि आर्थिक साधनों का आधार खत्म हो जान पर राजनीतिक अधिकार भी टूट गए हैं, जिनमें फलस्वरूप और भी सामाजिक विघटन और पतन हुआ है। महान् पीटर के युग में रूस की यही दशा थी। क्या हम नहीं जानते कि राजनीतिक अधिकारों से हीन वहाँ के रयन लोग कभी मुक्त और सम्मानित नागरिक थे? प्राचीन और मध्ययुगीन यूरोपीय समाज में अनेकानेक स्तर बने हुए थे और उनके बीच अन्तरजातीय विवाह और सम्भवतः अन्तरजातीय खान पान बर्जित हो गया था। जर्मनी में तो कितने ही देवताप्रा के पुरोहिता और साधारण-जन के पुरोहितों के बीच भी अन्तर-जातीय खान पान बढ़ हा गया।^{१०४}

व्यापारी और औद्योगिक वर्ग का उदय और विकास होने पर सामाजिक बचन ढाल पड़ने लग। इतिहास बताता है कि बूजुआ (पूँजीपति) वर्ग के उदय के साथ एथेस का व्यापारिक और औद्योगिक साम्राज्य पला। उसने बाद ही राजमत्ता व्यापारी वर्ग के हाथ में आ गई और सामाजिक बचन टूटने लगे। रोम में उद्योगों का विनाश हुआ ही नहीं। सूला और मेरियम का गृह युद्ध अभिजात तथा मध्यवर्गों की आपसी लड़ाई थी। रोम के अभिजात वर्ग ने अन्त तक अपने का जन-साधारण से पर्यक् रखा। शायद यही कारण है कि इसाई धर्म की प्रजाति-त्रय साम्यवादी प्रकृतिवादी रोमन कैथोलिक चर्च की नींव-स्थाही में तयदील हो गई।

उपयुक्त पश्चिम में प्रकट है कि हिन्दू जाति-व्यवस्था के उद्भव की व्याख्या में तो प्रजाति-विद्वान् में मिलती है, न रंग भेद के सिद्धान्त से और न मन-सिद्धान्त में ही। जन-जातीय वैदिक युग में जाति-व्यवस्था का कोई चिह्न नहीं था, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि समाज कई वर्गों में बँटा हुआ था। तब क्या यद्वान् जन-जातीय समाज जन-जातीय साम्यवाद के दौर में गुजर रहा था? परन्तु ऐसी बात भी नहीं बचाने बंदों में राजन्य का स्पष्ट उल्लेख है। राजा के दूत गिर सत्तिका का एक गिरौह रहता था। धाग चलकर राज

काज से पुरोहित का कम पयक कर दिया गया। इस प्रकार सनिक सामंतों के वग से पुरोहित वग का उदय हुआ। सम्भवतः उस समय तक रैयत वग (स्ति और उस्ति) भी विकसित हो चुका था। कालान्तर में व्यक्तिगत सम्पत्ति का भी कुछ इसी प्रकार उदय हुआ। बदकालीन राज्य कर्वायनी या जन-जातीय राज्य था। और उन दिनों तक वग जाति में परिणत नहीं हुआ था। भोजन और स्नान-सम्बन्धी निषेध भी लागू नहीं थे। श्रुग्वेद में पात है कि वामदेव नामक ब्राह्मण ने क्षुधात शत्रुस्था में एक चाण्डाल (प्रदूत) के घर कुत्ते का मांस खाया। श्रुग्वेद में ही एक दूसरे श्रुषि ने कहा है मैं चारण हूँ मरे पिता वध और मेरी माँ पत्थर तोहन वाला। धन प्राप्ति की इच्छा से हम लोग तरह-तरह का आयोजन करते हुए पशु की तरह दूसरा का अनुगमन करते जीते हैं। इन्द्र के लिए सोम रस प्रवाहित हो। १२ श्रुग्वेदिक काल में उस जातिहीन समाज में धनिका का एक उच्च वग बन गया था जिसे महा कुल या भगवत कहते थे। उन दिनों वैश्य वग भी क्षत्रियों से तथा स्वाधीन गृहों से जोकि क्षेती तथा अन्न निम्न कम में लग गए थे अपनी रक्षा करने के लिए आपारी संध बना रहा था। जहाँ-तहाँ दासा का भी उल्लेख मिलता है।

परवर्ती युग अनिर्वायन वग संध का युग था जिसमें प्रत्येक वग अपनी प्रभुता स्थापित करने की चेष्टा कर रहा था। राज्या (क्षत्रिया) ने दूसरे वर्गों के ऊपर श्रेष्ठता का दावा किया। १३ परन्तु इनके विरोध में ब्राह्मणों का दावा था कि वे राज्या के भी ऊपर हैं। १४ इसके अन्तर्गत जन साधारण और अभिजात वग में भी संध चलता था। अत्रिय-ब्राह्मण संध का विस्तृत वर्णन रामायण में (ब्राह्मणों के दृष्टिकोण से), महाभारत में तथा जन धर्मग्रन्थ हरिवंश और सुभूम चरित में मिलता है। भागवतगीय ब्राह्मणों के नेता परशुराम थे और हैदवगीय क्षत्रियों के नेता कालकीय अजुन। वीवर और जीमा का मत है कि यह युद्ध वन्ध युग और महाकाय युग के मध्यवर्ती काल में हुआ था। वीवर का कहना है कि इस संध में पुरुरवा और नहुष आदि क्षत्रिय राजा ब्राह्मणों पर घोर अत्याचार करते थे। क्षत्रियगण ब्राह्मणों का स्त्रियो और गायों का अपहरण कर लते थे। इसी युग में ब्राह्मणों ने ब्राह्मण्यस्तोत्र, ब्राह्मणविस्तोत्र और शतश्लोकी स्तोत्र की रचना की। पार्सेटोर का कहना है कि यह संध सौ वर्षों तक चला और अंत में ब्राह्मण लोग पराजित हो गए। १५ परन्तु जीमा का कहना है कि ब्राह्मणों को कुछ सुविधाएँ अवश्य मिल गई जैसे दान लेने का अधिकार प्राणदण्ड से मुक्ति

जाति-व्यवस्था का उन्मूलन और विकास

आदि आदि । इस प्रकार घोर बग-मघप के बाद ब्राह्मणों का पुरोहिताइ पर एकाधिकार प्राप्त हुआ । मेनाट तथा दूसरे विद्वान् इस मघप को बग-मघप नहीं मानते । इनका कहना है कि प्राचीन भारतीय ग्रन्था में जाति का उल्लेख नहीं है, परन्तु तत्कालीन समाज में बग नहीं थे बल्कि जातियाँ ही थीं ।^६

बौद्ध-युग में क्षत्रिया ने पून सर्वश्रेष्ठ बण होने का दावा किया । गौतम बुद्ध का भी ऐसा ही दावा था । बौद्ध और जैन साहित्य में क्षत्रिय का ब्राह्मण से श्रेष्ठ घोषित किया है । उस जमान में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच घोर झगडा था । दोनों में इस कदर भेद भाव आ गया था कि श्रीरन्दम नामक राजा ने पुरोहित के पुत्र को हीनजाति अथवा हीनकुलात्म्य वहाँ कोसल के राजा ब्राह्मणों को इनका नीच समझते थे कि अपने ब्राह्मण कर्मचारियों से बातचीत करते समय के बीच में एक पर्दा डाल लेते थे ताकि उनका मुह न देखना पड़े । माक्य क्षत्रिय जब अपनी मभा में बैठे होते तब मभाभवन में किसी ब्राह्मण को प्रवेश करने देखकर वे हँसते-हँसते लोट पोट हो जाते थे और उसे पीछे धकेल देने थे । वे उसे बैठने के लिए भी नहीं कहते थे ।^७ उनका गौतीय अभिमान और औपत्य चरम सीमा पर पहुँच गया था ।

संस्कृत साहित्य में अनाय शब्द का प्रयोग प्रथम बार इनापूव पाचवीं सदी में हुआ है । इस शब्द ने प्रजाति-समय का सिद्धान्त मानन वाला की कल्पना में पर लगा दिए हैं । उनका कहना है कि धार्यों ने इस शब्द का प्रयोग भारत के मूल निवासी द्राविडों के लिए किया है । यदि ऐसा रहता तो इस शब्द का प्रयोग बहुत पहले हुआ रहता । वैदिक युग में इस शब्द का पता भी नहीं था । इसका प्रयोग यास्क ने अपने निरुक्त और निषण्डु में किबटों (परवर्ती मागधा, अथात् वनमान विहार के पटना और गया जिले के रहने वालों) के लिए किया था । बीबर का कहना है कि यह शब्द विद्रोही बौद्धों का छोटक है । ब्राह्मण लोग इस शब्द का प्रयोग उन सभी लोगों के लिए किया करते थे जो वैदिक नियम अथवा धर्म का पालन नहीं करते ।^८

स्मरणीय है कि उही दिनों बुद्ध अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे और मगध वासियों ने उनका धर्म मगध पहले स्वीकार किया था । इसलिए ब्राह्मणों ने मगध को धर्मियों की भूमि कहना शुरू किया, परन्तु जन और बौद्धों ने मगध को श्रेष्ठ धर्मियों की भूमि कहा । इसमें बिलकुल माडा है कि धर्म शब्द किसी प्रजाति का सूचक नहीं, जैसा कि जमन विद्वानों ने समझा और प्रयोग किया । इस शब्द का मूलन धार्मिक और सामूहिक धर्म था जो धर्म चतुर गम्भीर राजनानि महत्त्व का विषय बन गया ।

इसके बाद ही भारतीय इतिहास का वह युग प्रारम्भ होता है जबकि पुरोहित वर्ग द्वारा समर्थित पट्टरपथी समाज-व्यवस्था के विरुद्ध क्षत्रियों द्वारा समर्थित बहु-जातिक क्रांतिकारी समाज-व्यवस्था का सघन द्वन्द्व चला गया। इस प्रसंग में स्मरणीय है कि जन घोर वीर्य धर्म के प्रवर्तक क्षत्रिय थे। नन्द और शूद्र भी इन धर्मों के सतत स भ्रष्ट होते नहीं रहे। ये दोनों धार्मिक आन्दोलन धार्मिक सघन के साथ साथ वर्ग-सघन के भी शोचनीय थे। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि प्राचीन या मध्ययुग में वर्ग सघन धार्मिक सघन के रूप में ही संचालित होता था। यह ठीक है कि यूनान और रोम जैसे राज्यात्मक, जहाँ राजनीतिक चेतना यथेष्ट विकसित हो गई थी वर्ग-सघन सुस्पष्ट राजनीतिक पथ का अनुगमन करता था। लेकिन रोमन साम्राज्य ने अन्तिम दिनों में जबकि दासता तथा निम्न वर्ग के लोगों ने ईसाई धर्म का स्वीकार कर लिया था और मध्ययुग में जबकि सुधारवादी सम्प्रदायों ने रोमन कथोलिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का नारा बुलन्द किया था तब क्या वर्ग-सघन के धार्मिक रूप धारण नहीं किया था ? ८२ सुधारवादी आन्दोलन के मूल में सदा ऐतिहासिक एवं भौतिकवादी शक्तियाँ काम करती रहती हैं। इतिहास की आन्दोलनवादी और भौतिकवादी व्याख्या का सयोग स्वार्थों की पीठिका पर होता है। ८३ वीर्य-युग में जबकि आन्दोलनों का घोर सघन चल रहा था ब्राह्मणतर वर्गों ने किस प्रेरणा पर वंश के विरुद्ध बगवत की ? जन साधारण ने क्या नर वीर्य धर्म स्वीकार किया ? स्पष्ट है कि इन विद्रोहों के रूप में भारत में पहली बार सामाजिक क्रांति का सूत्रपात हुआ था। उस क्रांति के मौलिक तत्त्वों को समझने के लिए उस काल के इतिहास को जानना चाहिए। मगध में शशुनाग क्षत्रियों का शासन समाप्त होने पर नन्द वंश का उदय हुआ। नन्दों को लोग क्षत्रिय नहीं मानते थे। जमा कि पुराणों में वर्णन आया है महापद्मनन्द ने क्षत्रियों को उखाड़ फेंका। ८४ उसने ऐसा क्या कर किया ? इस पर पुराण मौन हैं। परन्तु पुराणों से इतना अवश्य पता है कि नन्दवंश वाले शशुनाग क्षत्रियों की अवधि सन्तान थी और महापद्मनन्द की माँ शूद्रा थी। सम्भव है कि इसी कारणवश नन्दवंश क्षत्रियों का विरोधी था। चन्द्रगुप्त मौर्य भी नन्दवंश की ही सन्तान था और उसके उदय के साथ साम्राज्य सत्ता शूद्रों के हाथ में चली आई। याद रखने की बात है कि यह परिवर्तन क्षत्रियों और शूद्रों के बीच घोर सघन के बाद ही हुआ होगा। नये शासक वर्ग ने निश्चय ही अपने को नई क्षत्रिय जाति के रूप में पुरस्थापित किया होगा। पुराणों में मगध के एक राजा विवापण का उल्लेख आया है जिसके विषय में भविष्य

जाति-व्यवस्था का उन्मूलन और विकृत

बाणी की गई कि वह क्षत्रिय जाति को पराजित कर कैंवनों, पको, पुत्रिदो और ब्राह्मणों को राजा बनायेगा। ८५ यह विवशपूर्ण कौन था, इसमें हमारी विशेष दिलचस्पी नहीं। यह चन्द्रगुप्त मौर्य भी हो सकता है या उसी के समान शय कोई। ८६ जायसवाल का खयाल है कि वह बनारस का सीयियाई क्षत्रिय बसफोरस ही था। ८७ शयवा वह महापद्मनद भी हो सकता है किन्तु एक बात निश्चित है कि इस सघप के सिलसिले में एक नई क्षत्रिय जाति का उदय हुआ। इससे यह भी साबित होता है कि सामाजिक स्तरों के निर्माण और परिवर्तन में राज्य का बहुत बड़ा हाथ होता है।

मौर्यों के उदय के साथ भारतीय इतिहास का दूसरा क्रान्तिकारी युग प्रारम्भ हुआ। पुराणों का मत है कि मौर्य वंश का स्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य हुए थे। ब्राह्मण कौटिल्य की मदद से वह मगध का सामन्त बन बैठा और अन्त में केन्द्रित भारतीय साम्राज्य का प्रथम सम्राट् हुआ जिम्ने विदेही गण्टो से भी अपना सम्पक स्थापित किया। वेदा में गूढ राजा 'जनगुनि का उल्लेख तो है ही श्रम एक दूसरा वृषल गूढ उत्तर भारत का सम्राट बना। इस गूढ राजा के शासनकाल में उसके ब्राह्मण मंत्री कौटिल्य ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'अर्थशास्त्र' लिखी। उसमें लिखा है कि जा गूढ जमानत दास नहीं बल्कि 'आयप्राण' है और जो बालिग नहीं हुआ है वमें गूढ को बेचन या बचक रखने बालि को १२ 'पण का अथदण्ड देना होगा आय को कदापि गुलाम नहीं बनाया जा सकता। यदि किसी आय ने अपने को बेच दिया है तो उसकी सन्तान मूय वापस करके पुन आयत्व प्राप्त कर सकती है ८८ यहाँ आय जात शयवा प्रथियुन दास के लिए भी लागू हो सकती है। वेदों में इस शब्द का आशय 'द' का कुछ दूसरा ही अर्थ प्रतीत होता है। वेदों में इस शब्द का आशय धार्मिक और साम्प्रतिक था, परन्तु कौटिल्य ने इसका राजनीतिक अर्थ प्रमाण किया है। तदनुसार 'आय का अर्थ नागरिक है। उस पूण राजनीतिक अधिकारों और कृतव्या से सम्बन्धित राज्य की नागरिकता शयवा सदस्यता प्राप्त थी। कौटिल्य के उपयुक्त उद्धरण में यह भी पात होता है कि 'गूढ भी आय थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद दूसरा महत्वपूर्ण शासन उमना पौर्य अगोन हुआ। कौटिल्य ने ब्राह्मणों की महिमा गाई थी, और गूढों को यद्यपि दासता में मुक्त रखे 'आय' माना था, फिर भी उनमें प्रति ब्राह्मणों के मुकाबले में बढोरता रखता था। परन्तु अगोन ने सभी प्रकार की वातुनी प्रगमानाएँ ममाप्त कर दी। गुप्तदमा और शब्दा के मामलों में उसने अपनी प्रजा के बीच किसी प्रकार

का अन्तर नहीं रखा और सबको घराघर माना। १८६ उसने ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों को खत्म कर दिया और राजवमचारियों को बिना किसी वण भेद के नियुक्त किया। यह भी एक कारण था कि आग चलकर ब्राह्मणों ने ब्राह्मण सनापति पुष्यमित्र के नेतृत्व में मौयवा के विरुद्ध विद्रोह किया। मौयों की सत्ता उलट गई और पुष्यमित्र गद्दी पर बैठे। इस प्रकार भारतीय इतिहास में प्रथम बार एक बड़े भूभाग पर ब्राह्मणों का शासन कायम हुआ। पुष्यमित्र गुग ने मौय राजा बह्मथ का मारकर उसकी राजगद्दी हथिया ली। उसमें पहली बार दावा किया गया कि ब्राह्मण राजा और सेनानायक भी हो सकता है। गुग ने प्रति उमम बड़ी कठोरता बरती गई है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि 'गूदा' यायाचीग के पद पर नियुक्त नहीं हो सकता। परंतु इसके पहले ऐसा कोई वचन नहीं था। 'गूदा' को बहुधा 'यायाचीग' नियुक्त किया जाता था बल्कि कौटिल्य के अथशास्त्र में भी इसका उल्लेख है।

पुष्यमित्र के शासनकाल में आग का शासन तब तोड़ लिया गया और उसका स्थान पर प्रतिक्रियावादी ब्राह्मण नीरुराही स्थापित की गई। मनुस्मृति अथवा मानव धर्मशास्त्र में 'गूदा' और बौद्धों के प्रति घोर घणा प्रदर्शित की गई है। बौद्ध प्रवृत्ति वाले विद्रोही 'गूदा' (अर्थात् पूर्ववर्ती शासक वग) और कटटर प्रतिक्रियावादी ब्राह्मणों (नवीन पूर्ववर्ती शासक वग) के पारस्परिक संघर्ष में इस घंटे का विणय महत्व है। गुग वग के अन्वय से लेकर गुप्त वंश की स्थापना तक (ईसा के बाद दूसरी सदी) उत्तर और दक्षिण भारत में अनेक ब्राह्मण राजा हुए। इसी युग में ब्राह्मणों की अश्रुता और पवित्रता का दावा पूणत स्थापित हुआ और पहली बार उन्हें प्रथम और सर्वोच्च वण माना गया। जसा कि भूपेन्द्रनाथ दत्त ने प्रस्तुत किया है जो पुरोहित वग अपनी परवरि के लिए दूसरे वर्गों पर निर्भर करता था वह बिना शासन-सत्ता की सहायता के भला किस प्रकार अपने अधिकारों के स्थापित कर सकता? विरुद्ध इतिहास में कहा भी पुरोहित वग ने ऐसे अधिकारों का दावा नहीं किया। यूनान रोम के पुरोहित यहूदियों के रवी ईरान के मगो मित्र के पुरोहित तथा सल्टों के 'डूड' ने कभी इस अधिकारों का दावा पना नहा किया। हाँ मध्ययुग में रोमन चर्च के पादरियों ने अन्वय कुछ इस ही अधिकार चलाये लेकिन उन दिना रोमन चर्च की प्रबल भौतिक राजसत्ता थी जिसके आधार पर उनके अधिकार माने गए। ६

दक्षिण भारत में उत्तर की अपेक्षा उग्रतर जातीयता सदा से विद्यमान रही

है। ऐसा क्यों ? प्रजाति सिद्धांत वालों का विचार है कि भारत के आर्य-निवासियों ने उत्तर में आर्यों द्वारा प्रताड़ित होकर दक्षिणापथ में शरण ली। याद रखने की बात है कि शुंग-कण्व काल में उत्तर की तरह दक्षिण भारत में भी ब्राह्मणों का प्रबल अत्याचार जारी था। निश्चय है कि दक्षिण की ब्राह्मणों ने महज हिन्दू कहलाने के लिए ब्राह्मणों का अत्याचार सहन नहीं किया होगा। वस्तुतः दक्षिण भारत में मातवाहन वंश ने लेकर विजय नगर साम्राज्य काल तक राजसत्ता ब्राह्मणों के हाथ में थी।

स्पष्ट है कि वर्ग-समूह के द्वारा ही किसी वर्ग (या उसकी प्रस्तरीभूत सना—जाति) का सामाजिक दर्जा निर्धारित होता था। बंगाल के इतिहास से यह बात और भी साफ़ हो जाती है। बहा के बौद्धों की राजसत्ता उलट जाने के बाद वे सब के सब अछूत हो गए। अनाचरणीय वर्ग के जितने भी अवशेष आज मिलते हैं, वे सब किसी काल के विस्मृत बौद्ध हैं। हिन्दुओं का राजत्व समाप्त हो जाने के बाद बंगाल के निन लोगों ने न तो ब्राह्मणवाद को बचल किया और न इस्लाम को, बल्कि अपनी पुरानी पूजा-पद्धति बचल रखी, वही आज अछूत कहलाते हैं।^१ इतिहास में इस तरह के अनक उदाहरण मिलेंगे। आधुनिक युग में भी यह सिद्धांत बचल कर रहा है। गुजर आज अछूत कहलाते हैं। परन्तु प्रतिहार, जो कि उनके पुराने सम्वन्धी हैं, राजपूत (आधुनिक क्षत्रिय) कहलाते हैं। सिंध (पाकिस्तान) के जाट इब्न कासिम के समय में असीब अछूत माने गए, परन्तु उत्तर राजपूताना में उनके सम्वन्धी आज क्षत्रिय होने का दावा कर रहे हैं। सयाल परगना (बिहार) के भुइयों अपने को क्षत्रिय मानते हैं, जबकि बंगाल के भुइया नीच जाति के अछूत माने जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जब जिस जाति का यथेष्ट शक्ति मिल जाती है, तब वह अपनी श्रेष्ठता का दावा करने लगती है। वर्ग विभेद की जड़ में आर्थिक असमानता रहती है और जब कोई वर्ग जाति बन जाता है तब वही आर्थिक शक्तियों उसका सामाजिक दर्जा भी निर्धारित करती है।

भारत के चार वर्ण निश्चय ही चार प्रकार की मनुष्य-जाति के सूचक नहीं थे। वे प्रजातीय तत्त्वों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। एक वर्ण के लिए मान लीजिये कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन प्रथम वर्गों के लोग एक प्रजातीय तत्त्व के प्रतिनिधि थे और उहने अपने को द्विज माना। उसी प्रकार उनके द्वारा पराजित भारत के मूल निवासी दास या अछूत कहलाए। यह बात यदि सच है तब फिर ऊपर के तीन वर्गों में कौन छोटा है और कौन

बड़ा—इस सवाल को लेकर क्याकर सपप हुआ ? बश्यो को द्विज समुदाय मे क्याकर सबसे नीचे जगह मिली ? प्रयवा क्या अभिज्ञात यग के लोगो ने वाणिज्य व्यवसाय म सगे हुए व्यक्तिओ के प्रति विरपोषित भवता के कारण बँश्यो को निम्न श्रेणी म स्थान दिया ? प्राचीन भारत म बँश्यो को धाय कहा जाता था । और जो बश्य और गूद्र एक साथ एक ही आर्थिक क्षेत्र म काम करते थे उन्हें धूद्रायु कहा जाता था । आग चलकर बश्य बचल ब्यापार वाणिज्य मे लग गए और कृषि कम तथा पशु पालन का काम त्याग दिया । कुछ श्निो बाद व लोग शक्तिशाली श्रष्टि बन गए । उनके अनक प्रभावशाली सभ थं । वेदा म उनकी श्चद्री गति थी । श्रत म बश्य बगोद्वय हयवदन ने उत्तर भारत म अपना प्रबल साम्राज्य भी स्थापित कर लिया । इस साम्राज्य की सीमा घामू दरिया से लेकर समुद्र तक पनी हुई थी । बँश्या के बाद राजसत्ता सूद्रा व हाय म आ गई ।

पजाव तथा आय स्थानो म एस अनक समुदाय थे जिहें प्रहिंसा म विश्वास नही था । बने लोग जनता की नजर म गिर गए । गूत्र की तरह वे भी हीन शणी म गिने जाने लगे । ६१ इस प्रकार बश्य और गूद्र एक सामाजिक स्तर पर आ गए । परंतु वदन का की स्थापना व साथ बरया का उदय प्रारम्भ हुआ । इससे स्पष्ट है कि यद्यपि बश्य प्रथम तीन वर्णो म एक थे, उनकी वास्तविक स्थिति गद्दा जती थी । परंतु आर्थिक और राजनीतिक गति बढने पर उनकी सामाजिक स्थिति भी उची हो ग ।

अब देखना चाहिए कि गद्द कौन थे । गूद्र क्या मानवशास्त्र का कोई वर्ण है ? अथवा इसका कोई आर्थिक या सांस्कृतिक अर्थ है ? ध्यान देने की बात है कि श्रुग्वेत् स लेकर रघुनन्दन तक जस-जस हम आधुनिक युग की आर बढने लगत हैं हम देखते हैं कि गूद्रा व प्रति ब्राह्मणो की असहिष्णुता बढती जाती है । कौटिल्य का अर्थशास्त्र उनके प्रति यदि बठार नही है तो कुछ उदार भी नही है । और मनु को तो उनके प्रति और धाश्रोग था ही । गीतम, बौधायन, आपस्तम्ब स लेकर कुल्लव भट्ट और रघुनन्दन तक जितने भी धमशास्त्र प्रणीत हुए उन सबम गूद्रा के प्रति ब्राह्मणो की बठोरता उत्तरोत्तर बढती गइ है । ६३ बौधायन न ब्राह्मण और गूत्र के बीच विवाद की अनुमति दी थी । ६४ आपस्तम्ब ने लिखा कि गूद्र अपने (उच्च जाति के) स्वामी व लिए आय की निगरानी म भोगन यनावर दे सकता है । उसने यह भी कहा कि स्त्रियो और गूत्रो म जितना कुछ परम्परागत गान है वही उनके लिए विद्या की चरम सामा है । ६५ श्री बी० पी० बाने का

संघाल है कि बोधायन और आपस्तम्ब ईसा पूर्व ६०० स ३०० वष के बीच अर्थात् वेदोत्तर काल में हुए थे।^{६१}

वशिष्ट ने अंतरजातीय विवाह के विरुद्ध मत दिया। उमने गूढ़ा को वेद पढ़ने से मना किया, बल्कि यह भी कहा कि गूढ़ा की उपस्थिति में किसी को भी वेदपाठ नहीं करना चाहिए। काल का विचार है कि वशिष्ट का जन्म ईसा के बाद पहली शताब्दी में हुआ था।^{६२} महाराष्ट्र के नागभट्ट और बंगाल के रघु-नन्दन मुलमाना के आक्रमण के बाद हुए। उन लोग ने बताया कि भारत में दरअसल दो ही जातिया थी—ब्राह्मण और गूढ़। उनके अनुसार सभी ब्राह्मणोत्तर जातियाँ महज गूढ़ हो गईं। यदि गूढ़गण वास्तव में किसी दूसरी प्रजाति के थे—यदि वे सचमुच के पराजित आदिवासी थे—तो निश्चय ही प्रारम्भ में अर्थात् आर्यों की विजय के तत्काल बाद उनके और आर्यों के बीच उग्र गद्गता रही होगी। आग चलकर सम्मिश्रण के जरिए गद्गता की भाग धीरे धीरे गान्त हुई होगी। किन्तु बात यहाँ कुछ उलटी ही दीखती है। ऐसा क्या? प्रश्न है कि गूढ़ थे कौन? क्या वे भारत के मूल निवासी थे? क्या वे आर्यों के समान में निम्नतम श्रेणी के लोग थे? अथवा क्या वे प्रारम्भिक वैदिक युग के दस्युओं और दासा की सन्तान थे? इन सब प्रश्नों की अब तक गणना नहीं हो सकी है। वैदिक इतिहास में लिखा है कि श्रुतमेव मे दस्युओं का भाति दासा का भी दानव रूप में वर्णन आया है। परन्तु किन्तने ही स्थलों पर ऐसा वर्णन मिलता है जिससे जान पड़ता है कि वे मानव थे और आर्यों के घोर गद्ग थे।^{६३} अथवा ऐसे भी प्रसंग हैं जहाँ गूढ़ को सोमयज्ञ में स्थान दिया गया है।^{६४} प्राचीन आर्या में सम्पन्न गूढ़ा का भी वर्णन आया है।^{६५} उनका राजमन्त्री के रूप में भी उल्लेख है।^{६६} बौद्ध ग्रन्थों में उन्हें 'गूहपति' कहा गया है। विधि-साहित्य में गूढ़ राजाघ्रा का भी उल्लेख मिलता है। 'अथ महिना' और 'तैत्तरीय संहिता' में गूढ़ा और आर्यों के प्रति अपराधों की चर्चा आई है।^{६७} 'तैत्तरीय संहिता' में गूढ़ा की जनति के लिए प्रायश्चित्त की गई है।^{६८} अथर्ववेद और 'वाजसनेयी संहिता' में गान्त हुआ है कि लोग आर्य और गूढ़, दोनों के प्रिय पात्र हाना चाहते थे।^{६९} 'सूत्रा न स्वीकार किया है कि गूढ़ों को वाणिज्य-व्यापार करने का अधिकार है।^{७०} यजुर्वेद संहिता में गूढ़ा और आर्यों के बीच अथर्व मीनाचार का उल्लेख है।^{७१}

उपरोक्त पवित्रों से गूढ़ों की सामाजिक स्थिति की जो छवि मिलती है, वह ब्राह्मणों की सदान्तिक विवेचना से सचपा मिलती है। गूढ़ आर्यों से पृथक्

किसी अन्य वजाति के लोग थे, ऐसा मानना सम्भव नहीं दीखता। सुप्रसिद्ध पुराण सूक्त में मही बताया गया है कि सभी जातियाँ ब्रह्मा से ही प्रादुर्भूत हुई। कौटिल्य ने स्पष्ट रूप से सूत्रों को मान्य माना है।

सूत्रों में सबसे बड़े गुरु, मनु ने भी कहा है कि वे अन्य नहीं थे। चारों वर्णों के पूरे पुराण 'मनु ही थे। 'अग्नि महिमा म सुत्र', विपान, चाण्डाल और म्लेच्छ' सबको ब्राह्मण वर्ण का माना है।^{१०५}

सूत्रों की सामाजिक स्थिति निर्धारित करने के लिए हमें 'धर्मशास्त्रों का हवाला दिया जाता है। वे निश्चय रूप से सूत्रों के प्रति कठोर हैं। किन्तु 'धर्मशास्त्रों के प्रणेता ब्राह्मणों ने क्या क्षत्रियों और वृक्षों के लिए भी कोई सद्भावना दिखाई है? द्रम दृष्टिकोण से 'धर्मशास्त्रों का अध्ययन अब तक नहीं हुआ है। इन आड़ों में हम लोग उनको दुहराए।

'किसी क्षत्रिय या वश्य ने यदि किसी प्रकार से किसी ब्राह्मणी का सहाय प्राप्त किया है, तो उस एक मास तक यव और गामूत्र पर रहकर प्रायश्चित्त करना चाहिए।'^{१०६}

यदि किसी नीच जाति की स्त्री के प्रति कोई शान्ति होता है तो यह बड़ा अपराध नहीं। परन्तु ऊँची जाति की स्त्री के प्रति इस प्रकार के भाव प्रकट करना अपराध माना जायगा और उसकी सजा प्राणदण्ड होगा।'^{१०७} यह दण्ड भी वर्णों की भेदता का ध्यान रखकर दिया जाएगा।'^{१०८}

ब्राह्मणों का अन्न लेने वाला दरिद्र होता है। क्षत्रिय का अन्न लेने वाला पशु समझा जाता है और वृक्षों का अन्न लेने वाला सूत्र हो जाता है। और, सूत्र का अन्न ग्रहण करने वाला तो सीधे नरक जाता है।'^{१०९} ब्राह्मण का दिया हुआ भोजन खाकर जो मरता है वह अमरत्व प्राप्त करता है। क्षत्रिय का भोजन खाकर मरनेवाला अगले जन्म में दरिद्र होता है। वश्य का दिया भोजन खाकर मरनेवाले अगले जन्म में सूत्र का भोजन खाना पड़ता है। और सूत्र का भोजन खाकर मरनेवाला अगले जन्म में नरक की पाशा भोगता है।'^{११०}

योभास या चाण्डाल द्वारा रींघा हुआ भोजन खाने वाले ब्राह्मण को चाहिए कि वह एक गाय दान करे, क्षत्रिय दो गाय दान करे, वश्य तीन गायें और सूत्र चार गायें।'^{१११}

सभी महापातकों (ब्राह्मणों को छोड़कर) प्राणदण्ड का भागी हैं। ब्राह्मणों को किसी भी प्रकार का शारीरिक दण्ड दिया ही नहीं जा सकता।'^{११२} ब्राह्मणों को निंदा करने वाले क्षत्रिय को एक सौ पण का जुर्माना होगा और वश्य को १५० से लेकर २०० पण का। परन्तु सूत्रों को शारीरिक दण्ड सहना

पड़ेगा। ११५ क्षत्रिय का अपमान करने पर ब्राह्मण को ५० पण का जुर्माना होगा, वैश्य का अपमान करने पर २५ पण का और शूद्र का अपमान करने पर १२ पण का। ११६

इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त हैं जिनसे पता चलता है कि ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य किसी जाति की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। परन्तु ये घम-शास्त्र महज घमशास्त्र ही तो हैं जिनमें विधि और दण्ड की असमानता के अलावा और है भी क्या? समाज ज्यों ज्यों जन जातीय व्यवस्था को छोड़कर सामन्तवादी व्यवस्था अपनाता गया इस प्रकार की असमानताएँ और दण्ड की कठोरता बढ़ती गई। साथ ही यह भी सच है कि अथमता और राजसत्ता यदि अधिक दिना तक पुराहित जाति के हाथ में रही नहीं होती तो इस प्रकार की बात नहीं हो पाती। हमें पुनः पृष्ठा में देखा है कि चारों जातियों में प्रत्येक ने किसी-न किसी समय राजसत्ता अवश्य प्राप्त की। परन्तु अन्त में ब्राह्मणों की बारी आई, और हिन्दू शासनकाल में उन्होंने ही सर्वाधिक समय तक राजसत्ता का उपयोग किया। उनके ही राजत्वकाल में घमग्रन्थों में सब फेर-बदल किये गए। बाद में मुसलमानों का आक्रमण हुआ और तब ब्राह्मणों के किये का कोई इलाज नहीं हो सका।

अपने की पवित्रता से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि हिन्दू जाति-व्यवस्था प्रजाति-मेष के कारण उत्पन्न नहीं हुई, और न जातियों का सामाजिक मान-आप-रवन के अनुपात पर निर्धारित किया गया। अमेरिका तथा अन्य देशों की मिश्रित जातियों से हिन्दू जातियों की तुलना करना व्यर्थ है। वेदा में वण (वग) का उल्लेख आया है। ११७ हम नहीं जानते कि भारत में प्रथम बार प्रवण करने वाले आर्यों की कौन सी प्रजाति थी और न हम यही जानते हैं कि वतमान काल की जातियों में से किसमें किस प्रजाति का कितना तत्त्व घुला मिला है। इसलिए हम लोग कह सकते हैं कि वैदिक काल तथा बदात्तर काल का वगभेद केवल सामाजिक अंतर का सूचक था। हमने देखा है कि हमें अपसत्ता और राजसत्ता के आधार पर ही सामाजिक मान-मर्यादा निर्धारित का जाती थी। पूर्वपृष्ठों में हमने राजनीतिक सान्द्रात्मता की एक भन्व देगी है। अब हम यह देखना चाहिए कि सामाजिक भेदभाव का कौन-सा आधिक आधार है।

साधारणतः हिन्दू समाज के चार भाग थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। परन्तु वास्तविक जीवन में अनेक जातियाँ थीं। मनुस्मृति में मनु ने भी

व्यापार, दौना था। परंतु यदि यह न माना जाए कि शिल्प-सघो म, जोकि उत्पादको और मजदूरो का सघटन हुआ करते थे, शूद्र को भी सदस्यता प्राप्त थी, तो मानना पडेगा कि शूद्रा के सघटन का कही कोई वणन उपलब्ध नहीं।^{१३०} ह्यवद्धन के अमान म जब वैश्या ने अपने को 'शूद्रार्युग्ना' से पृथक कर लिया तो शूद्रो ने अपना अलग व्यावसायिक सघ बनाया। उनमे बढई, नाई, बुनकर, मूर्तिकार और किसान आदि पेशेवर लोग थे। शूद्रो के नीचे भी अनेक लोग थे जो टोकरी बनात थे, चमड़े का काम करते थे या बतन गढते थे।^{१३१}

उपयुक्त विवेचन से यही निष्कप निकलता है कि हर पेशेवर जमात की अलग जाति थी। जिस जमात का पेशा जितना ही होन होता था, उसकी सामाजिक हैसियत भी उतनी ही नीची मानी जाती थी।

जाति-व्यवस्था का इतिहास

वैदिकयुगीन भारत में तथा आवेस्तावालीन ईरान में समाज वर्गों में बंटो हुआ था। प्रारम्भ में तीन ही वर्ग थे। चौथा वर्ग आगे चलकर बना। जसा कि सेनाट ने लिखा है कि ईरान के चारों पिरथा और हिन्दू समाज के चारों वर्गों में एक महत्त्वपूर्ण समानता है।¹ सेनाट तथा दूसरे विद्वानों ने स्वीकार किया है कि वर्ण वर्तुत वर्ग का उतक था जाति का नहीं। परन्तु सेनाट का कहना है कि परवर्ती वैदिक युग में वर्ण ही रूढि होकर जाति बन गया। अतः हम देखना चाहिए कि विभिन्न युगों में हिन्दू जाति व्यवस्था का किस प्रकार विकास हुआ है। इस विषय के सम्बन्ध अध्ययन के लिए हम भारतीय इतिहास को वैदिक युग से लेकर मगदी शासनकाल तक दस युगों में बाँट सकते हैं

- (१) वैदिक युग
- (२) उत्तर वैदिक युग
- (३) मौर्य युग
- (४) शुंग-कुषाण युग
- (५) आध-कुषाण युग
- (६) भारतीय-बाकातक युग
- (७) गुप्त युग
- (८) बहमन युग तथा परवर्ती युग
- (९) इस्लाम का आक्रमण तथा परवर्ती युग
- (१०) ब्रिटिश शासनकाल।

वैदिक युग (ई० पू० ३०००—ई० पू० ६००)

वैदिकयुगीन समाज अस्थिर और मायावर था। जैसे समाज में पित्रागति पर आधारित विभिन्न सामाजिक सदृहों का होना असम्भव था। जो भी समूह के के कार्यकारी थे। इसी प्रकार वैदिक देवताओं के भी वण थे, यथा, अग्नि

और बृहस्पति ब्राह्मण^२ इन्द्र, वरुण और सोम क्षत्रिय, वसु रुद्र, आदित्य, वैश्वदेव और मरुत आदि वैश्य, और पूषा आदि गूढ़ थे।^३ महाभारत में भी लिखा है कि "इनमें आदित्य ब्राह्मण हैं, मरुद्गण क्षत्रिय हैं, अश्विनीकुमार गूढ़ हैं और अगिरा से उत्पन्न देवगण ब्राह्मण हैं। इस प्रकार देवताओं के भी चार वर्ण हैं।"^४

देवताओं के ये चार वर्ण उनके कार्यों के आधार पर बँटे हुए थे। ऐतरेय ब्राह्मण की निम्नलिखित पंक्तियाँ से यह बात साफ हो जाएगी—'ब्रह्म-वादिषा ने कहा है कि इस यज्ञ में देव वैश्या की पूजा होगी, कार्त्तिक देव-वैश्या की उपासना करके मानव वैश्य बनवाने वनते हैं।"^५

पहले बताया जा चुका है कि वैदिक काल में जनसाधारण को 'विस' कहते थे। उन दिनों खूब मार काट हुई थी। इसलिए लोग विभिन्न वंश और वर्गों में बँट गए थे और अपने-अपने को राजन्य कहते थे।^६ ये राजन्य सामूहिक रूप से क्षत्रिय कहे जाने लगे। हम ऐसा भी मानते हैं कि क्षत्रिय राजा स्वयं यज्ञ किया करते थे। पुरोहिता को उह कोई आवश्यकता नहीं थी। वशावलि से मालूम होता है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय एक ही परिवार से उत्पन्न हुए थे। राजा रितिभन का एक पुत्र देवापि ब्राह्मण था और दूसरा पुत्र गान्तनु क्षत्रिय^७ और उन दोनों ने जनता के शोषण के लिए क्रमशः ब्राह्मणों और क्षत्रियों को सघटित किया—'पुरोहिता को सुन्ड करा क्षत्रिया को सुन्ड करो' यह उनका नारा था।^८

उन दिनों प्रत्येक जन जाति में कुछ भाट परिवार रहते थे, जिनका काम राजा और जनता के बीच बर्तों का प्रशस्ति-मान करना था। म्यार ने लिखा है कि ऐसा लगता है कि ब्राह्मण गान्तनु पहले ऋषि और कवि का बोध होता था। आगे चलकर उसका अर्थ दूषा यज्ञ कराने वाला पुरोहित। अन्त में पुरोहित का भी एक निश्चय अर्थ हो गया।^९

कालान्तर में गायक भाट राजाओं के लिए नितान्त आवश्यक हो गए। पुरोहित के बिना सम्पन्न हुए यज्ञ में अग्नि हविष्य को देवगण ग्रहण नहीं करते, इसलिए जो कोई भी राजा यज्ञ करता, उसे ब्राह्मण पुरोहित रखना पड़ता था।^{१०} अनुमान है कि हिन्दू समाज में पुरोहिता का दल उसी प्रकार से उठ खड़ा हुआ और कालान्तर में वे इतने शक्ति सम्पन्न हो गए कि ब्राह्मण देवता भी कहलाने लगे।

इस प्रकार 'विस' से ब्राह्मण और क्षत्रिय, दो वर्ण निकल गए। गेय बचे जन-साधारण जो वैश्य कहलाए। उनके लिए दूसरा कोई चारा भी नहीं था।

वे पूर्ववत् ऋषि वायु म लगे रह । उनका वग मन्त्रया सुविधाहान था, जिस पर क्षत्रिया और ब्राह्मणों का दुहरा प्रभुत्व चलता था । जब ऊपर के दोनों वर्गों ने अपने अपने व्यवसाय को वगानुगत बना लिया तब वैश्य क्षत्रिहरा और पशुपालको ने अपना सपटन पहले वशानुगत रूप म नहीं बल्कि गिल्ड (सामूहिक सहचारितार) के आधार पर बनाया । प्राण चलकर, अपने गतिमय सैनिक व्यवसाय के कारण वश्यगण समाज व 'बल माने जाने लगे । इस लिए अथर्ववेद म निम्नोक्त प्रकार स वर्गीकरण किया गया है—ब्राह्मण क्षत्रिय और वत ।^{१०} दूद्र का वश्य क साथ दूद्रायु नाम स उल्लेख हुआ है । इस समाजतंत्र के बाहर रहन वाले वगविहीन लोग का नाम 'व्राव्य' था । जीमर का मत है कि वाव्यगण भी प्राय ही थे, परन्तु उन्हाने ब्राह्मणतंत्र को स्वीकार नहीं किया था । बाद म गायद उनके लिए ही मनु न मिश्रित जाति का प्रयोग किया है ।

अब विचारणीय है कि इन वर्गों की समाज म क्या वग थी ? प्राचीन समाज म व्यक्ति की स्थिति अर्थान्ध के परिमाण पर तय होती थी । वर्गों की सामाजिक स्थिति वा माप भी यहा था । ऋग्वेद म उल्लेख है कि एक आदमी की १०० गाए थी । यजुर्वेद म भी यही सख्या उल्लिखित है । किन्तु वग भेद का कही कोई उल्लेख नहीं है । *Wer geld* स आदमी के सामाजिक वग का कोई सम्बन्ध नहीं था । इसका अर्थ है कि उन दिना समाज म वग विभाजन का रूप रूढ नहीं था । तब क्या किसी व्यक्ति के लिए वग-परिवर्तन करना सम्भव था ? अर्थात् क्या कोई आदमी एक व्यवसाय को छोडकर दूसरा व्यवसाय ग्रहण कर सकता था ? उस समय तब व्यवसाय वगानुगत नहीं हुआ था । प्रमाण है कि एक ऋषि स्वयं कवि थे उनका पिता वध थे उनकी माँ अनाज पीसने वाली थी ।^{११} क्षत्रिय राजा विश्वराट की क्या तो प्रसिद्ध ही है कि वे किस प्रकार क्षत्रिय से ब्राह्मण ऋषि विद्वामित्र बन गए । उसी प्रकार यानवल्क्य के उपदेश से राजा जनक भी ब्राह्मण बन गए थे ।^{१२} इस तरह अनेक ब्राह्मणों के क्षत्रिय बन जाने के भी उदाहरण मिलते हैं । वसे ब्राह्मण ब्रह्म-क्षत्रिय कहलाते थे । इन ब्रह्म-क्षत्रियों के विषय म मत्स्यपुराण म लिखा है— इ -
वाला ने, जिनका कि भृगु वश (एक ब्राह्मण वश) म उत्पन्न होना है राज्य-गोश्री की स्थापना की ।^{१३}

पुनश्च अगिरा के वराज कण्व थे । और के क्षत्रिय वग के पीर उत्पन्न हुए थे ।^{१४} उरुया, कपिसा गार्गया, प्रियम्बदा और मोद् म भी यही बात है ।^{१५} पुराणा म क्या आई है कि वसाल :

एक क्षत्रिय राजा भालानन्द वैश्य हो गया ।^{११} यह भी जाना है कि 'ऋग्वेद' में तीन वंश मंत्रकार थे—भालानन्द, वत्स या वासव और सक्लि ।^{१०} पुराणा में लिखा है कि य वैश्य ब्राह्मण बन गए ।^{१८} इस तरह वैदिक-वाङ्मय से व्यवसाय-परिवर्तन के रूप में वग परिवर्तन के अनेक प्रमाण एकत्र किये जा सकते हैं । शतपथब्राह्मण में व्यापारस याक्यान ने अपनी सन्तान के विषय में ऐसा कुछ कहा है जिससे प्रतीत होता है कि वे लगभग भिन्न-भिन्न सामन्त बन सकते थे, पुरोहित बन सकते थे अथवा साधारणजन भी रह सकते थे ।^{१६} 'ऐतरेय ब्राह्मण' में विश्वान्तर स कहा गया है कि उसने यदि गलत अर्घ्य दिया तो उसकी सन्तानें अथ तीन जातियाँ का हो जाएँगी ।^{२०} 'ऋग्वेद' में अर्ध्व ऋषि के कथन से मालूम पड़ता है कि मानो वे राजा हो जाएँगे ।^{२१}

अनेक उदाहरणों में स इन कुछ एक उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी व्यक्ति अपने पते और वग को बदल सकता था । इस काल के अन्तिम चरण में ब्राह्मण अथवा स हम ब्राह्मण जाति की वग चेतना का आभास मिलता है । 'ऐतरेय ब्राह्मण' में ब्राह्मण को क्षत्रिय तथा अथ वर्गों से श्रेष्ठ कहा गया है ।^{२२} 'तन्त्रिरीय ब्राह्मण' में ब्राह्मण वग का ईश्वर और गूढा का असुर कहा गया है ।^{२३} 'कौपीतिकी ब्राह्मण' में ब्राह्मण का देव या देवाधिदेव कहा गया है ।^{२४} 'शतपथ ब्राह्मण' में ब्राह्मणों का अथा दान, अजेयता और अविद्यता आदि विशेष सुविधाओं की भाँति की है ।^{२५}

इस स्थल पर ब्राह्मणों और क्षत्रियों के नीपण वग-मध्य का भी उल्लेख है । इसका प्रधान कारण गायत्री ब्राह्मण की स अस्मभव भाँति ही हो सकती है । रामायण में ब्राह्मण परागुराम और क्षत्रियों के बीच युद्ध की कथा आई है । अन्त में ब्राह्मण हार गए, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्हें अनेक सहूलियतों भी प्राप्त हुई । नाम गायत्री लिखत हैं कि राम से पराजित होकर परागुराम कुछ ब्राह्मणों के साथ दक्षिण की ओर चले गए । दक्षिण भारत में नम्बूदिरी ब्राह्मण उन्हीं ब्राह्मणों के वंश माने जाते हैं । सर, जो हा अन्तिम दिना में पुरोहिताई वगानुगत हो गई थी । तब ब्राह्मणगण रक्त की गूढता पर विशेष रूप से ध्यान देने लगे । कवच ऐलुन को जुधारी और दासिपुत्र बहकर ताना मारा गया है, हालाँकि ब्राह्मण भी उनकी जादूगरी व वायल थे ।^{२६} वग पर गूढा स उत्पन्न होने का आरोप लगाया गया और समुचित शूद्रोत्पत्ति के बाद ही उसे स्वीकार किया गया ।^{२७} हम जावाल के पुत्र शत्यकाम की कथा भी मालूम है । शत्यकाम दासी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और उसे यह भी मान्य नहीं था कि कौन उसका पिता है । यह बात उसने

साफ-साफ बता दी, तभी हरिदुमत गौतम ने उसे अपना गिष्य बनाया। गिष्य बनाते समय हरिदुमत गौतम ने कहा कि एक ब्राह्मण-मुत्र ही अपने सम्बन्ध में इतनी कठिन बात इस स्पष्टता से कह सकता है।^{२८}

इस काल में जाति-व्यवस्था नहीं थी। उन दिना ममाज में वे शर्तें भी नहीं थीं जिनके कारण जाति-व्यवस्था जसी सत्या बन पाती है। विभिन्न वर्गों में बिना किसी बाधा के गादी होती थी। क्षत्रिय राजा रयनिधि ने अपनी कन्या ब्राह्मण सकारव को दी थी।^{२९} ब्राह्मण वृहस्पति ने अपनी कन्या विवाह क्षत्रिय राजा सवनय भवगय से कर लिया था।^{३०} त्रिज और दूद के बीच भी विवाह-सम्बन्ध हुआ करते थे। द्विज पुरुष दूदाओ से विवाह करते थे।^{३१} और उसी प्रकार भोज भी भी कहा वजना नहीं की गई है। गाम शास्त्री में अन्तरजातीय भोजन भी कहा वजना नहीं की गई है। गाम शास्त्री में ऐसे कोई नियम नहीं थे जिनसे अन्तरजातीय भोजन और शादी-ब्याह के सम्बन्ध निषेध होता।^{३२}

(२) उत्तर वदिक ऋषि

उत्तर वदिक काल का सामाजिक इतिहास ब्राह्मण और क्षत्रिया के वर्ग सम्बन्ध का इतिहास है। उही बिना राज वेन ने पुरोहितों को यज्ञादि बन्ध करने से रोक दिया था राजा पुरुरवा ने ब्राह्मणों के आभूषण छीन लिए थे और द्रुप ने एक हजार ब्राह्मणों से अपनी शिविना तिववादी थी।^{३३} ये कथाएँ वेदा तथा गतशुदीय ब्राह्मण्य और ब्राह्मणवी आदि ग्रन्थों में मिलती हैं। सनाट स्वीकार करते हैं कि बन्ध से बन्ध बड़ा ही बटुतापूर्ण था।^{३४}

समय में दोनों वर्गों का पारस्परिक सम्बन्ध बड़ा ही बटुतापूर्ण था। कविल के सार्य दशन ऐसी दशा में बन्धिता का प्रत्याख्यान स्वाभाविक था। कविल के सार्य दशन में तथा आजीविका विभिन्न तीथकरा और अहिंसा के प्रचारका ने वदिक ऋषि का विराध किया। य सत्र वदिक विधियाँ और पुरोहित वर्ग की कलित धृष्टता के विरुद्ध धार्मिक और बौद्धिक विद्रोह के लक्षण थे। सार्य दशन' ने मनुष्य का विवरण चार विभाजन तीन गुणा (चारित्रिक लक्षणों) सत् रजस और तमस (त्रिगुण) के आधार पर किया। बौद्ध और जन धर्म के उदय के बाद उत्तर वदिक युग समाप्त हो गया।

इसी युग (६०० ई० पू० से ५०० ई० पू०) में अनाय शब्द का प्रथम प्रयोग यास्क नामक एक व्यक्ति ने ऋग्वेद के एक सन्ध की व्याख्या करते हुए

किया। यास्क के अनुसार 'कीकट' अनायों का देश था।³⁴ क
 पात हुआ कि कीकट नाम मगध का था। देवर का मत है कि 'अ' -
 का प्रयोग यास्क ने ऐसे आर्यों के लिए किया है जो 'अदीक्षित' और ब्राह्मण-
 विराधी थे। व यह भी सोचते हैं कि 'अनाय' शब्द बौद्धों और उनके पूर्ववर्तियों
 के लिया गया है।³⁵ तत्कालीन सस्कृत विद्वान् सायण ने 'कीकट' का अर्थ
 'नास्तिक' बतलाया है और 'मागध' का अर्थ सूदपूर। मगध में ही बुद्ध ने
 अपना दशन प्रचारित किया। बौद्ध साहित्य में मगध को आर्यों का देश माना
 गया है। लेकिन ब्राह्मण साहित्य में इसे अनायों का देश कहा है। डॉ० भूपन्द्र-
 नाथ दत्त का मत है कि बुद्ध और यास्क समकालीन थे और दोनों ही दो
 परस्पर विरोधी दल में थे, इसी कारण व्याख्या में यह अन्तर है।³⁶ अगर
 'अनाय' शब्द का अर्थ 'अदीक्षित' है, तब स्पष्ट है कि 'अनाय' शब्द बौद्धों का
 धोतक था, क्योंकि बौद्धों में विश्वास नहीं रखते थे और अदीक्षित ही रहा
 करते थे।

इस प्रकार हम अब तक दल चुके हैं कि किस प्रकार साग अपनी रचि के
 अनुसार अपना पैगा चुना करते थे। रामायण में एक ब्राह्मण की चर्चा आई है
 जो हल-बुदाल चलाकर अपनी आजीविका उपार्जन करता था। लेकिन
 महाभारत काल में ब्राह्मण ऐसा 'नीच' काम नहीं कर सकता था।³⁷ महाभारत
 में स्पष्ट पात होता है कि समाज में बग विभे उतरोत्तर बढ़ रहा था। उसमें
 लिखा भी है—'ब्राह्मण को भीषण भागकर जीवन-यापन करना चाहिये, क्षत्रिय
 अपनी प्रजा को रक्षा करे वंश्य को धनोपार्जन करना चाहिए और शूद्र को
 चाहिए कि वह उपयुक्त तीना वर्गों की सेवा करे।' * * और भी लिखा है
 "उपयुक्त तीना वर्गों में से किसी का का कोई आदमी यदि अपने वर्गोचित
 कर्तव्य से विचलित होना है तो वह शूद्र हो जाएगा।" * * यह सब परिवर्तन
 रामायण काल से महाभारत काल तक आते-आते हो गया। इन महाकाव्यों के
 बाद धर्मशास्त्रों और स्मृतियों का युग आता है। किसी भी धर्मशास्त्र का
 सब तक ठीक संप्रत्यय नहीं हो सकता जब तक हम उस युग का निम्न वह
 धर्मशास्त्र लिखा गया, अक्षय्य तरह प्रत्ययन नहीं कर लेते और उसने लक्षक
 जिस वातावरण में रहते थे उसकी जानकारी नहीं प्राप्त कर लेते। सभी धर्म
 शास्त्रों में गौतम, बौधायन और आपस्तम्ब के धर्मशास्त्र सर्वाधिक प्राचीन
 माने गए हैं। वाणेश का मत है कि ये सब धर्मशास्त्र ६०० ई० पू० से ३००
 ई० पू० के बीच लिखे गए। * * गौतम और बौधायन ने मिथिल जातियों की
 एक लम्बी सूची दी है। गौतम का कहना है कि क्षत्रिय पुरुष और शूद्र स्त्री

से उत्पन्न सन्तान यवन बहलाएगी। आपस्तम्ब इस विषय पर मौन हैं। परन्तु उन्होंने पहली बार भोजन के सम्बन्ध में अस्पृश्यता का उल्लेख किया है। गौतम ने आपस्तम्ब के इस मत का विरोध किया है। यास्क और दुर्गा जो इस दोनों के पहले हुए थे इस विषय पर चुप हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन दिना कुछ भी निर्दिष्ट नहीं था। परन्तु ब्राह्मणों में सबसे अलग अलग रहने की प्रवृत्ति प्रवृत्ति थी।

जैसा कि आपस्तम्ब ने लिखा है— यदि भोजन करते समय उसे (ब्राह्मण को) कोई शूद्र छू लेता है तो उसे भोजन छोड़ देना चाहिए। शूद्र द्वारा साईं गई कोई भी बन्धु जिसे वह छूए या न छूए नहीं खाना चाहिए शूद्र द्वारा दिया हुआ पानी स्नातक (शीक्षित) नहीं पिये।^{४३} वौघायन ने द्विज और शूद्र के बीच विवाह की अनुमति दी है लेकिन गौतम ने नहीं। यथा गणना क विलोमक्रम से छोटी जाति के पुरुष द्वारा ऊँची जाति की स्त्री से उत्पन्न पुत्र कोई भी धार्मिक सस्कार (जैसे श्राद्ध आदि) नहीं कर सकता।^{४४} जिस पुरुष की स्त्री शूद्र जाति की है, उसे श्राद्ध के अवसर पर भोजन नहीं कराना चाहिए।^{४५} पुनश्च गौतम-संहिता में ही हम विधि रूप से शूद्रों के विरुद्ध कठोर नियमों का दशन होता है। जस, राजा को चाहिए कि वह शूद्र के उस भग को बटवा दे जिससे उसने (शूद्र ने) किसी ब्राह्मण का अहित किया है या उसको मारा है। उस शूद्र को जिसने किसी ब्राह्मण को लूट लिया है अथवा ब्राह्मण को कोई सामग्री चुराकर छिपा ली है, मौत की सजा देनी चाहिए।^{४६} यही हम यह भी पहली बार पाते हैं कि अपराधी के वग के अनुसार दण्ड-कर में भी विभेद था। जैसे जिस शूद्र ने ब्राह्मण के साथ एक घासन पर बठने की चपटा का है अथवा जिसने ब्राह्मण के साथ सहक पर बराबरी का व्यवहार किया है उस १०० पणा का अयदण्ड मिलना चाहिए। उसी प्रकार उस क्षत्रिय का भी जिसने ब्राह्मण के साथ दुर्व्यवहार किया है उतना ही दण्ड मिलना लकिन वास्त्व म ब्राह्मण पर आपात करने पर दण्ड की रकम दुगुनी हो जाएगी। ब्राह्मण के साथ अशुद्ध व्यवहार करने के अपराध में वदय को २५० पणा का अयदण्ड मिलना चाहिए। लेकिन एक क्षत्रिय के साथ अशुद्ध व्यवहार करने के अपराध में ब्राह्मण को केवल ५० पणों का दण्ड मिलेगा। और वदय के प्रति किया गए कम अपराध के दण्ड में ब्राह्मण को उक्त रकम का केवल आधा ही दना पड़ेगा। शूद्र के साथ दुर्व्यवहार करने के लिए ब्राह्मण को कोई दण्ड नहीं मिलना चाहिए।^{४७}

उम सन्नानि काल म इसी प्रकार की वस्तुस्थिति थी। सामाजिक-

प्राथमिक व्यवस्था में परिवर्तन होने के बाद अर्थात् मुद्रा के रूप में अथदण्ड के स्थान पर गो के रूप में अथदण्ड देने की पद्धति चल निकलने पर सामाजिक अममानता की खाई और भी चौड़ी हो गई। दण्ड और उत्तराधिकार के नियमों में भी व्यावहारिक विभेद शुरू हो गए। वगसघप की एक नई और अधिक जटिल अवस्था का प्रारम्भ हो रहा था। तबिन इस काल में ब्राह्मणों को हम सैनिक या गासन-मन्व-धी अधिकारों का दावा करने नहीं पाते। योधायन और आपस्तम्ब, दोनों ने ब्राह्मणों को गासन छूने से मना किया है।

धर्मशास्त्रों ने समाज को हमेशा ब्राह्मणों की दृष्टि से देखा है। इसलिए उन्हें पक्षपातपूर्ण और सबका एकागो वणन मिलता है। और, उनकी कही हुई बातें भी नहीं मिलती। बौद्ध और जन-ग्रन्थों में हिन्दू समाज का बिलकुल दूसरा ही चित्र मिलता है। इस प्रकार हम उससे सामाजिक नामाजिक स्थिति की तुलना करने का अवसर मिलता है। लेकिन बौद्ध और जैन-ग्रन्थों पर विचार करने से पूर्व एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर दे लेना चाहिए। हमने रामायण में देखा है कि किस प्रकार पहली बार वग-सघप में ब्राह्मणों की हार हुई। अब सवाल है कि महाकाव्य-काल के बाद ही उन पराजित ब्राह्मणों ने भला किस प्रकार बिलकुल उल्टी बातें बताने बाने धर्मशास्त्रों को प्रस्तुत किया। उन्हें इतना गंभीरगाली हाने का कब मौका मिला। जब हम देखते हैं कि महाभारत के युद्ध में प्रगतिशील पाण्डवों ने कटकरपथी और प्रति-क्रियावादी कौरवों को हरा दिया था, तब यह प्रश्न और भी महत्त्वपूर्ण हो उठता है।^{५८} लेकिन स्मरण रखना चाहिए कि महाभारत के युद्ध में ब्राह्मणों का किसी प्रकार की हानि की आशंका नहीं थी। महाभारत युद्ध ने भारतीय धर्मशास्त्रों की गंभीरता का नाश कर दिया। क्षत्रिय सैनिक, अभिजातवर्गीय सामन्त और राजे-महाराजे द्वारा की गयी सत्या में भारे गए। परन्तु उधर ब्राह्मणों का दल हार भी गया, ता भी वग के रूप में उनकी कोई हानि नहीं हुई। वे इस युद्ध की ज्वाला में सबका अलग रहे और उनके धर्म-जन पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। उनकी सफलता युद्ध के परिणामों पर निर्भर नहीं करती थी। उनकी स्वायत्त सिद्धि केवल एक राजा को दूसरे राजा के विरुद्ध एक दल को दूसरे दल के विरुद्ध सहा देने में थी। इन उद्देश्यों में सफलता भी मिली। महाभारत के युद्ध में क्षत्रियों की गंभीरता सबका विनष्ट हो गई और ब्राह्मणों को इतने से ही मतलब था। ब्राह्मणवाद का विरोध क्षत्रियों के नेतृत्व में ही होता था, और अब जबकि यह विरोध खत्म हो गया था ब्राह्मणवाद के लिए देण्ड के सभी भागों में निर्विरोध फैलने का और यथा एव आचार-

विधियाँ के व्यापक प्रचार का स्वयं सुयोग प्राप्त था। राजाओं और जनता को ब्राह्मण जाति की गुलामी कबूल करनी ही थी।^{१६} यही कारण है कि महाकाव्य-काल व बाद गौतम बौधायन और आपस्तम्ब की संहिताओं जैसे ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे और प्रचारित किये गए।

अब हम बौद्ध और जन-ग्रन्थों पर विचार करें। मधुरसुत में मधुरा और वाकण के राजाओं व बीच बातचीत हुई है जिसमें उन लोगों ने ब्राह्मणों व विधेयाधिकारों पर विचार किया है। बुद्ध का मत है कि व्यक्ति और व्यक्ति के बीच वास्तविक विभेद धर्म (धम्म) के आधार पर ही हो सकता है न कि वर्ग विभेद (जन) के आधार पर।^{१७} यदि किसी क्षत्रिय ने यथेष्ट सम्पन्नता प्राप्त कर ली है तो वह किसी भी क्षत्रिय ब्राह्मण वर्य अपवादा दूद से सेवा न सकता है। उसी प्रकार अन्य तीनों वर्गों का कोई भी धनी क्षत्रियी क्षत्रिय ब्राह्मण, वर्य और दूद से, अपवादा सबसे काम करा सकता है और व सब अपने स्वामी की सेवा में बिना अपनी जाति का ध्यान किये एक सा उत्साह दिखाए सकते हैं।^{१८} इस प्रकार की कथाएँ 'अस्मलयात सुत' वसट्ट सुत अम्बट्ट सुत आदि में मिलती हैं। सभी बौद्ध और जन ग्रन्थों में क्षत्रियाँ का ब्राह्मणों से भेद बतलाया गया है। गौतम बौधायन और आपस्तम्ब की संहिताएँ कभी चलन में नहीं आईं। परन्तु उनमें हमें इतना अवश्य पान होता है कि ब्राह्मणों का दिमाग किस प्रकार से काम करता था। ब्राह्मणों का विराध करन पर भी अन्तरजातीय विवाह प्रचलित था। बुद्ध ने ब्राह्मण अम्बट्ट को धानचीन के सिलसिले में स्मरण दिलाया है कि वह कृष्णायन वर्य का है जोकि एक क्षत्रिय राजा की दासी से निष्पत्ता है।^{१९} कुम्मास विण्ड जातक में मातिया व राजा की पुत्री में कोणलराज नाबति के विवाह की कथा आई है।^{२०} बनारस व राजा के ब्राह्मण पुरोहित को एक नीची जाति की स्त्री से अवैध पुत्र हुआ जिस ब्राह्मण मान लिया गया।^{२१} किसी व्यापारी की कन्या ने एक चाण्डाल का देखा और उस पर क्रुद्ध हो गई। परन्तु पीछे वह उसी चाण्डाल को ब्याही गई।^{२२}

३ मौर्य युग (ई० पू० ३२३ वर्ष से ई० पू० १८५ वष)

भारत पर मगध के आक्रमण से उत्तर बंदिब बान का अन्त हो गया। उस काल का सबसे प्रतापी राजा नन्दवर्ग का एक दूद था। नन्दों के सम्बन्ध में पुराणों में अनेक कथाएँ उपलब्ध हैं। विष्णु एवं नागवत पुराणों में लिखा है कि नन्दवर्ग वाले द्वितीय परशुराम की भाँति क्षत्रियों का उन्मूलन कर

देंगे। नन्दवर्ग के अन्तिम शासक को चन्द्रगुप्त मौर्य नामक एक दूसरे शूद्र ने कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण की महायत्ना से मार डाला। चन्द्रगुप्त मौर्य ने जिस मौर्य साम्राज्य की स्थापना की, वह भारत के सर्वाधिक विस्तृत साम्राज्यों में से है। मौर्यों के उदय के साथ ही 'पासक' वर्ग के रूप में क्षत्रियों की पूर्ण पराजय हो गई। अब प्रश्न है कि सत्ता के हेतु जन्म धारण करने वाला शूद्र किस प्रकार सम्भ्राट् के पद पर आसीन हो सका? क्या यह कट्टे वर्ग-संघर्ष के बिना सम्भव था? हमने क्षत्रिय विद्वामिन और ब्राह्मण वर्गिण्ड के बीच होने वाले संघर्ष का रूप देखा है। बर्दिक काल में परगुराम के नेतृत्व में भी ब्राह्मणों को क्षत्रिया में लाने देखा है। उत्तर बर्दिक काल में राजा शक्ति क्षत्रिया के हाथ में थी, यद्यपि महाभारत के बाद उनका बल संवत्सा क्षीण हो गया था। सम्भव है कि इस परिस्थिति में लाम उठाकर ब्राह्मणों ने शूद्रों से साठ-गाँठ का और क्षत्रियों के विरुद्ध संघर्ष शुरू कर दिया। अन्त में नन्द और मौर्यवर्ग के उदय के साथ क्षत्रियों की पूर्ण पराजय हो गई। प्रमाण उपलब्ध है कि नन्दा की नीति ब्राह्मणों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण थी।^{५६} मौर्यकाल में मन्त्री कौटिल्य ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'अर्थशास्त्र' की रचना की। 'अर्थशास्त्र' में किंग्डम धर्मनिरपेक्ष राज्य के नियम दिये गए हैं। जर्मन इतिहासकारों ने स्पष्ट उल्लेख है कि राज्याना धर्मिन नियमों का भी प्रत्याख्यान कर सकती है।^{५७} यह तो नहीं कहा जा सकता कि कौटिल्य ने शूद्रों के साथ 'याय' किया, पर इतना अवश्य सत्य है कि उसने ऊपर के तीन वर्गों और शूद्रों के बीच अन्तरजातीय विवाह की अनुमति दी। उसने शूद्रों को धर्म स्वीकार किया और दासप्रथा उठा दी गई। उगने 'अर्थशास्त्र' में साफ शब्दों में लिखा है कि शूद्रों और अन्त्यजा को भी वेद पढ़ना चाहिए। ये सब कौटिल्य के कुछ क्रांतिकारी वाक्य थे। शूद्रों के राजत्वकाल में किसी दूसरे प्रकार की व्यवस्था होनी नहीं सकती थी। परन्तु स्थान-स्थान पर 'अर्थशास्त्र' शूद्रों के प्रति काफी कठोर भी है। डॉ० कालिदास नाग तथा अन्य विद्वानों का मत है कि बाद के इतिहासकारों ने इन अंशों को 'अर्थशास्त्र' में अपनी ओर से मिला लिया है। कौटिल्य ने शूद्रों को राज्याधिकारण में उपस्थित होकर गवाही देने का अधिकार दिया था। 'अर्थशास्त्र' का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग दण्ड और जुमनि के सम्बन्ध में है। धर्म तक ब्राह्मणों को दण्ड दिया ही नहीं जाता था अथवा दिया भी जाता था, तो महज नाम मात्र का। धर्म शान्तियों के मुद्दाबल में व निश्चय ही बहुत कम जुमाना देते थे। कौटिल्य ने कहा कि 'अगर किसी शूद्र को उसका सम्बन्धियों ने बेच दिया है या बांधक

डाल दिया है और वह जमना दास नहीं बल्कि धाय है और नावालिप है तो उसे बेचने या बचक डालने वाला को जुमाने में १२ पण देने पड़ेंगे। उसी प्रकार किसी बंद्य को बेचने या बचक रखने के लिए २४ पणों का दण्डियों के लिए ३६ पणा या और ब्राह्मणों के लिए ४८ पणा का जुर्माना होगा।^{५८} कौटिल्य के इस प्रादेग संश्लेषण के लिए साफ हो जाती हैं। यथा—

शूद्र जमना धाय भी था। अपराधी जितने ही ऊँच वर्ग का होगा उमको सजा भी उतनी ही अधिक मिलगी। धायत्व का दासता संवही कोई मेल नहीं है आदि आदि।

जायसवाल का मत है कि कौटिल्य ने धाय शब्द को स्वतंत्र शब्द का समानार्थक माना है उसका सिद्धान्त है कि धाय दास नहीं हो सकता। इस सिद्धान्त के अन्तगत वह उन स्वतंत्र शूद्रों को भी ले आता है जिन्हें वह धाय प्राण (स्वाप्त प्रतिस्वाप्त से धाय अर्थात् स्वतंत्र व्यक्ति) कहता है।^{५९} अर्थशास्त्र सहम निष्कप निवाल सकते हैं कि 'धायत्व विशेष प्रकार की आर्थिक-सामाजिक प्रथा पर निर्भर करता था। अगर धाय शब्द का अभिप्राय किसी जाति विशेष से जाना तो निश्चय ही उसका अर्थ नहीं बदलता। कौटिल्य इस बात में भी सावधान था कि अपराध के हेतु मिलने वाले दण्ड से—यहाँ तक कि मृत्युदण्ड से भी ब्राह्मण बच न सके।

डा० जायसवाल का विचार है कि देश के सभी दीवानी और राजदारी कानून अर्थशास्त्र में सही सही लिख जाते थे। हिन्दू विधान वास्तव में धर्म शास्त्र से नहीं निबला है बल्कि अर्थशास्त्र पर आधारित है।

चन्द्रगुप्त मौर्य के पौत्र अशोक न शासन-काल तक आते आते ब्राह्मणों के पासण्ड का बचा रचा चिह्न भी नष्ट हो गया। पशु बलि पर सवधा प्रतिबन्ध था और उसके साथ साथ वैदिक विधि-पर्यहारों पर रोक लगा दी।^{६०} पंडित हरप्रसाद शास्त्री का मत है कि ये सब कानून ब्राह्मण वर्ग के विरोध में बनाये गए थे और चूँकि इन्हें शूद्र शासक ने चलाया था, इसलिए ब्राह्मणों को इनसे सास चिन्ता थी।^{६१} एक शिलालेख में भदेवा (पृथ्वी पर के देवता—ब्राह्मणों) को भड देवता कहा गया है।^{६२} ब्राह्मण जाति के अधिकारों और विशेषाधिकारों को आखिरी ठोकर उस समय लगी जब अशोक ने धर्म महामात्य नियुक्त किया। दण्ड के मामलों में सभी बराबर थे। अन्ततः के सामने किसी को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। इस प्रकार कानून की नजर में सबकी समानता का सिद्धान्त स्थापित हो गया। फलतः ब्राह्मणों की शक्ति का मड भी धूलिसात हो गया। अशोक तथा उसके परवर्ती मौर्य शासकों

ने बौद्ध धर्म को राजधर्म मान लिया था और बौद्ध धर्म वेदों की मर्यादा और धातुणा की श्रेष्ठता का प्रत्याख्यान करता था, ईश्वर और आत्मा में विश्वास नहीं रखता था। इसलिए उग्र वगैरे सधर्म का दूसरा प्रकरण आरम्भ हो गया।

शुंग-कण्व युग

मौर्य वंश के अन्तिम शासक बृहद्रथ को उसके ब्राह्मण महासेनापति पुष्यमित्र शुंग ने मार डाला और स्वयं गद्दी पर बैठ गया। भारत के इतिहास में यह पहला अवसर था जबकि १८४ ई० पू० में एक ब्राह्मण राजसिंहासन पर आसीन हुआ। शुंगों के उदय के बाद ब्राह्मणवादी प्रतिक्रिया अपने चरमबिन्दु पर पहुँच गई। बहुतेरे विद्वान् इस युग को ब्राह्मणवादी प्रतिक्रान्ति का काल मानते हैं। पुष्यमित्र ने राजगद्दी पर बैठने के उपलक्ष्य में अश्वमेध यज्ञ किया। उसके शासन काल में सभी बौद्ध विहार बिनष्ट कर दिये गए। बौद्ध भिक्षुओं की हत्या की गई। बर्दिक आचार्य का पुनरुत्थान हुआ।^{६३} जायसवाल के शब्दों में यह 'कठोरपथी प्रतिक्रान्ति' थी। इसी युग में 'मानव धर्मशास्त्र' धर्मात् मनुस्मृति लिखी और प्रचारित की गई। जायसवाल का कहना है कि इस ग्रन्थ से ही प्रमाणित हो जाता है कि इसकी रचना पुष्यमित्र के शासन-काल में हुई क्योंकि इसमें पुष्यमित्र द्वारा की गई राजहत्या का समर्थन किया गया है। 'मनुस्मृति' ने बड़ी कठोरता से अथशास्त्र तथा मौर्यकालीन ग्रन्थ नियमों को जलटकर रद्द दिया। जायसवाल का कथन है कि मनुस्मृति इस प्रकार के अपने राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक पूर्वाग्रहों से आक्रान्त है और सम्भव है इसी कारण इसका इतनी ऊँची मायता प्राप्त है। राज्यानुमोदित होने के कारण ही इसने विधान को लोगो ने स्वीकार कर लिया। यह भी सम्भव है कि इस धर्मशास्त्र को शुंग काल का शासन विधान मान लिया गया।^{६४}

अब हम जरा इस 'मानव धर्मशास्त्र' का संप्रेषण विवेचन करें। इसमें लिखा है कि परिस्थिति विरोध में राजा की हत्या भी की जा सकती है। इसका एक-मात्र उद्देश्य पुष्यमित्र के राज्य की संपादन करना है। यह धर्मशास्त्र शुंगों के विरुद्ध जितनी दूर तक गया है, उतनी दूर तक दूसरा कोई धर्मशास्त्र नहीं जाता है। इसमें ब्राह्मणों को शुंग शासन के राज्य में रहने से मना किया है।^{६५} इतना ही नहीं इसमें स्पष्ट लिखा गया है कि शुंग 'पामाधीन' नहीं हो सकता।^{६६} यह नियम मौर्यकालीन नियमों की ठीक विपरीत था। इसमें यह भी लिखा है कि जिस राज्य में शुंगों की सभ्यता विनाश है और वे नास्तिक हैं और वहाँ द्विज नहीं हैं, वह

राज्य अथवा तथा नाना प्रकार के रीया का गिवार होकर शीघ्र ही विनष्ट हो जाएगा। ये बातें वस्तुतः शीघ्र राज्य जैसे शूद्र राज्य व प्रति ब्राह्मणों की आपवाणी थी। इस प्रकार मनु के शास्त्रों का शूद्रों से विवाह करने की अनुमति दी गई है।^{१८} तबलेन भाग चलकर एत विवाह को वर्जित कर दिया गया है।^{१९} इसमें लिखा है कि ब्राह्मणों और क्षत्रियों व इतिहास में परम्परा में कहीं भी उल्लेख नहीं है कि उन्होंने विपरीत परिस्थिति में भी शूद्रों से विवाह किया।^{२०} मानव धर्मशास्त्र का इतिहास व प्रतिक्रिया सम्मान भाव का यह इस उद्धरण से प्रकट है। हम जानते हैं कि इन कालों में शूद्रों में भी शक्ति का विकास हुआ था।^{२१}

मानव धर्मशास्त्र में इस प्रकार की विरोधी बातें भरी पड़ी हैं। इससे जान-बूझकर शूद्रों को श्रेष्ठ मानने से इनकार किया है। इसमें लिखा है कि जिस प्रकार मवेशी और घोड़ों के बच्चे उनके मातापिता की जायदाद हाँ जाते हैं उसी प्रकार दासी की संतानें उसके स्वामी की सम्पत्ति हो जाती हैं। यहाँ भी धर्मशास्त्र के नियम को ताक पर रख लिया गया है। ब्राह्मणों का इतिहास कोण से रची गई पुरानी दृष्ट प्रणाली को फिर से जारी किया गया। यदि कोई शूद्र किसी द्विज को अपना कहता है तो उसकी जीम काट ली जाएगी, क्योंकि वह नीच वर्ग में उत्पन्न है। यदि वह द्विज का नाम और जाति का घृणापूर्वक उच्चारण करता है तो उससे मुख्य में दस भगुल लम्बी लोह की बाल धुमेठ दी जाएगी। यदि वह ब्राह्मणों को उनका मतलब सिखा देने की प्रयत्न करता है तो राजा उसके मुख और कान में गरम तेल डलवा देगा और नीच जाति का कोई व्यक्ति अपने जिस भग से (अपने से श्रेष्ठ तीन) उच्चतम जातियाँ में से किसी भी जाति के व्यक्ति पर आघात करेगा तो उसका वह भग काट लिया जाएगा। ये सब मनु की सीख हैं।^{२२} इतना ही नहीं मानव धर्मशास्त्र ने शूद्रों को अपनी सम्पत्ति से भी वंचित कर दिया। ब्राह्मणों को आसानी से दास शूद्रों की सम्पत्ति जप्त कर सकता है, क्योंकि शूद्रों की अपनी कोई सम्पत्ति नहीं हो सकती। जिस वस्तु पर स्वामी का अधिकार हो सकता है, वही किसी वस्तु पर दास का अधिकार नहीं हो सकता।^{२३}

ये तमाम बातें धर्मशास्त्र के विपरीत पढ़ती हैं। इनमें हमें बहुरूपी ब्राह्मणों की श्रेष्ठ और आधी मनोवृत्ति की तसवीर मिलती है। उन्होंने अपनी श्रेष्ठता पर विशेष रूप से जोर दिया है। मानव धर्मशास्त्र में भी लिखा

है 'अर्थाभाव के कारण मरणासन रहन पर राजा को वेदज्ञ ब्राह्मण से कर नहीं लेना चाहिए।' १०५ शूद्रा के लिए अग्नि-परीक्षा जैसी प्रयाणें चालू की गई। कौटिल्य ने अपराधी का पता लगाने के लिए जाच-पड़ताल की जा विधि बनाई थी, वह उठा दी गई। इस तरह का वग-विभेद रोजमर्रा के आर्थिक सम्बन्धों में भी बरता जाता था। जब "महाजन वज्रदार ब्राह्मण से सैंकड़े दो पण की दर से सूद लेगा, क्षत्रिय से सैंकड़े तीन पण की दर से, वैश्य से सैंकड़े चार पण की दर से और शूद्र से सैंकड़े पाच पण की दर से।" १०६ कौटिल्य ने सूद की दर में इस तरह का वग विभेद नहीं किया था।

इस प्रकार अशोक की व्यवहार-क्षमता गुग काल में बिलकुल खत्म हो गई। ब्राह्मणों के लिए मृत्यु दण्ड उठा दिया गया। " ब्राह्मणों के शरीर पर किसी प्रकार की चोट नहीं लगनी चाहिए ब्राह्मण-हत्या से बढ़कर दूसरा कोई दुष्कर्म दुनिया में नहीं है, इसलिये राजा को ब्राह्मण-धर्म की बात मन में भी नहीं लानी चाहिए।" १०७

ऐसे समय में जन्म और वग के प्रश्न को महत्त्व देना स्वाभाविक ही था। इसलिये सजातीय विवाह पर भी विशेष रूप से जोर दिया जाता है। मनु-स्मृति में कई मिश्रित जातियों का उल्लेख मिलता है। उसमें लिखा है— 'वर्णों के सम्मिश्रण के कारण, विवाह के लिए अनुपयुक्त स्त्री से विवाह करने के कारण तथाविहित कतव्यों की अवहेलना के कारण मिश्रित जातियाँ बन गई हैं।' १०८ अतः 'मनुस्मृति' की दृष्टि से उच्च वर्णों की रक्त-शुद्धता का आग्रह करना सबका युक्तिसंगत था— "अच्छा वीर हमारा प्रशंसित होता है।" १०९

'मानव धर्मशास्त्र' में ब्राह्मणों ने पहले-पहल खुलकर अपने विशेष राज-नीतिक अधिकारों का दावा किया। उसमें लिखा है— 'वही-से-वही विपत्ति में भाँ राजा ब्राह्मणों का श्रेष्ठ बनकर, क्योंकि श्रेष्ठ होने पर ब्राह्मणों की ही राज्य का नाग कर सकता है शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, ब्राह्मणों महादेव के समान है।' ११० उसमें यह भी बताया गया है कि राजा सात-आठ ऐसे ब्राह्मणों का मंत्री रखे जायें वेदा में पारंगत हैं और वशापरम्परा से जितना राजदान से सम्बन्धित हो। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में इस प्रकार के वग विभेद का कड़ा काँड़ उल्लेख नहीं है। राजनीतिक क्षेत्र में ब्राह्मणों के दावों का परम रूप 'मनुस्मृति' में इस प्रकार बताया है— 'महासनापति का पद तथा राज्य पाने का अधिकार दण्ड देने और नष्ट करने का अधिकार तथा सब पर शासन करने का अधिकार उही लोगों का मिलना चाहिए जो वेदा में निष्णात हैं।' १११ इसके पहले किसी भी संहिता या स्मृति में इस प्रकार का दावा नहीं

नहीं किया गया था। डा० जायसवाल का कहना है कि ये सारी बातें दरअसल पुष्यमित्र-वृत्त राजतुल्या का चानुरीपूर्ण युक्तिपोषण है। 'मनुस्मृति' ने राजा के दबी अधिकारों का भी प्रतिपादन किया है।^{१२} इसका परिचय अथवार-मुरूप की कल्पना में मिलता है। यह एक स्पष्ट संकेत है जिससे ज्ञात होता है कि हिंदू समाज सामंतवादी स्वरूप ग्रहण कर रहा था।

दूसरा धर्मशास्त्र जोकि ब्राह्मण शासनकाल में लिखा गया बणिष्ठ-स्मृति है। इसमें मनुस्मृति की बातों का समर्थन किया गया है। परन्तु यह स्मृति क्षत्रिय के प्रति अधिक कठोर है। इसमें लिखा है कि ब्राह्मण को लूटनेवाला व्यक्ति बिखरे बाल दौड़ता हुआ भाये और राजा के समक्ष उपस्थित होकर बड़े महाराज में लुटेरा हूँ मुझे दण्ड दीजिए। इस पर राजा उसे उदुम्बर काष्ठ का बना शस्त्र दे जिससे वह व्यक्ति आत्महत्या कर ले। वेदों में कहा गया है कि मृत्यु के बाद वह पापमुक्त हो जायगा।^{१३} पतञ्जलि पुष्यमित्र के समकालीन थे। उन्होंने पाणिनि के व्याकरण की जो टीका लिखी है उसमें उाहरण के रूप में उाहने भी मनु और बणिष्ठ के मन को स्वीकार किया है।

धार्मिक-कुपाण युग

शग वंश के बाद कण्व वंश का शासनकाल आया। यह ब्राह्मण वंश था। इस जमाने में मानव धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) और बणिष्ठ-स्मृति को सर्वमान्य शासन एवं दण्ड विधान मान लिया गया। कण्व का शासनकाल ई० पू० ७२ वष में शुरू हुआ और ई० पू० २७ वष में समाप्त हो गया। इस प्रकार शग एवं कण्व वंश के ब्राह्मणों ने १५७ वष तक भारत में राज्य किया और १५७ वष तक मानव धर्मशास्त्र का समाज में बोलचाल रहा। किन्तु उत्तर-कण्व काल में कलिग में सारवेल का उदय हुआ। कहा जाता है सारवेल ने मगध के कण्व शासक भस्मित को मार डाला। उसके अभिलेखों में लिखा है कि यवनराज निमित (मध्य एशिया का निमिथ्रियस) उसके भय से वापस लौट गया था। उसने (सारवेल) बौद्ध सत्राट अशोक की भाँति जन पंडितों की एक सभा बुलाई। उसी काल में बकिट्टया के यवन पश्चिम के दरों को पार कर भारत में प्रवेश करने लगे। ये आक्रमणकारी विभिन्न भाषा भाषी थे। इनका आक्रमण अनेक वर्षों तक चला। अतः म के भारत के पश्चिमी एवं उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के शासक बन बैठे। इन आक्रमणों के कारणों ने उत्तर भारत की समाज व्यवस्था में विधेय रूप से भाग

लिया। व पूणत भारताय हा गए। उन्हाने अपनी ही जाति के गसन कनिष्क के राजत्व म, जिसका साम्राज्य बंगाल की खाड़ी तक फैला हुआ था, बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। इसलिए वे ब्राह्मणों के लिए कभी गम्य नहीं हो सके। ब्राह्मणों ने हमेशा उन्हें विदेशी और भ्रष्ट माना। जसा कि जायसवाल ने बताया है, इसका एक कारण यह था कि "कुषाणों के प्रारम्भिक दिनाम उस वक्त के किसी राजा ने अग्निदेव के मन्दिरों को गिराकर उनके स्थान पर बौद्ध विहार बनवा दिए सभी जातियों को मिटाकर व्यावहारिक रूप में एक जाति बनाई गई। लोग हिन्दू देवता की जगह अवगिष्ट हडिडया की पूजा कर लगे। वर्णाश्रम प्रथा मिटा दी गई।" ५५ बौद्ध धर्म, अन्तर्राष्ट्रीय धर्म था ही, अब बाफ़ा आक्रामक भी हो गया। इसके फलस्वरूप बड़-बड़े सामाजिक परिवर्तन हुए। कुषाण राज्य के बनारस स्थित प्रान्तपति ने अपने क्षेत्र का क़रीब-क़रीब ब्राह्मण विहीन बना दिया। उसने उच्चवर्गीय ब्राह्मणों का दमन किया और विदेशियों तथा निम्नजातीय व्यक्तियों को पदा पर ला बिठाया। यह सामाजिक अत्याचार और धार्मिक कट्टरता की नीति थी, जिसका पालन परवर्ती कुषाण शासकों ने भी किया। इस नीति के पीछे कुछ राजनीतिक उद्देश्य भी थे। ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था में कुषाणों का बला के लिए तिरस्कार-ही निरन्वार था। स्वभावतः ऐसी समाज-व्यवस्था का नाश करने के लिए उन्होंने अनेक प्रयत्न किए। ५६ उनकी नीकराही ने उत्तर भारत में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का गूना ध्वस्त कर दिया।

लेकिन उत्तर-दक्षिण भारत में अश्वमेध के सातवर्षीय अथवा सातवाहन वक्त की धर्मध्वंसायामें ब्राह्मणवाद की जड़ जम रही थी। सातवाहन ब्राह्मणों के थे। कुषाणों का बला बहिष्कार में था, किन्तु ये भारतीय थे। इसलिए इनमें कुषाणों की अपेक्षा अधिक राष्ट्रप्रेम था। सम्भव है कि उनका यह दावा कुषाणों के विरुद्ध युद्ध लाने का बहाना मात्र था। दर, जो हो, ब्राह्मणों की उत्तर भारत में जाति हुई वह दक्षिण में एक ब्राह्मणवर्गीय गसन के राजत्व में पूरी हो गई। गौतमोपनिषद् मानकों के गसनकाल में अश्वमेध का भी दमन कर दिया गया। इस प्रकार ब्राह्मणों का बग-सघप अश्वमेध और बौद्ध—दोनों के विरुद्ध था।

इसी काल में यानवन्धय धर्मशास्त्र की रचना हुई। स्वर्गीय जायसवाल के अनुसार इसका रचनाकाल ई० बाद दूसरी शताब्दी है। यह धर्मशास्त्र मनु के धर्मशास्त्र का विकसित रूप है। हमें बौद्धों के प्रति घृणा दिखलाई गई है क्योंकि उन दिनों भी बौद्धों का धर्माविनम्बी कुषाण-बादलों का राज्य था। जायसवाल का मत है कि यानवन्धय ने मध्य देश के किसी

भाग में इन ग्रन्थों की रचना का। हम लिखा है कि पीत धीवरधारी जोड़ों का दशन अगुम होता है।^{१५१} किन्तु इसमें गर-शयिया के प्रति या स्नेच्छा के प्रति भी वही धुत्तेग्राम और सीधे तौर पर विद्वेष प्रदर्शित नहीं किया गया है। डा० दत्त का मत है 'चूँकि उन दिनों उत्तर भारत में कुषाण वगैरे का राज्य था इसलिए याज्ञवल्क्य ने अपने अभिमत की परिस्थिति में अनुसूच प्रकट किया।^{१५०} यह समय का ही प्रभाव था कि इस धर्मशास्त्र में 'मनुस्मृति' की अपेक्षा शूद्रों की स्थिति अच्छी दिखलाई गई है। याज्ञवल्क्य-स्मृति' के अनुसार उन्हें चात्रायण श्रत रखने की भी छूट थी। पहले यह अधिकार केवल ब्राह्मणों का ही था। उसी प्रकार तमाम अतिरक्षणीय दण्ड विधान, जो शूद्रों के दमन के लिए बनाये गए थे उठा दिये गए थे। स्मरणीय है कि उन दिनों महाराष्ट्र में आभारराज ई वरसन के नृत्व में शूद्रों का पुनरुदय हो रहा था।^{१५२} ऐग समय में याज्ञवल्क्य स्मृति का लिया जाना ब्राह्मणों की गुप्त कारवाही थी। जिस समय यह स्मृति लिखी गई उस समय हमको मायना प्राप्त नहीं हो सकी। लेकिन आगे चलकर—गुप्तवर्षीय सम्राटों के राज्य काल में—इस स्मृति में सम्पूर्ण आर्यावत्त में मनुस्मृति का स्थान ल लिया। मनुस्मृति रद्द कर दी गई।^{१५३} एक और बात स्मरणाय है। अथ स्मृतियों की नांलि याज्ञवल्क्य स्मृति' ने यह नहीं लिखा है कि आर्यावत्त किस भू-भाग को कहते थे। वस्तुतः आर्यावत्त का परिभाषा उस समय भी भी कठिन क्योंकि ब्राह्मणवादी बटटरता के इस गढ़ पर उन दिनों बौद्ध धर्मावलम्बी कुषाण राजाओं का ही आधिपत्य था।

भारतशिव वाकातक युग (ई० पू० १५० वर्ष से ई० पू० ३२० वर्ष तक)

भारतशिव वाकातक काल को बटटरपथी ब्राह्मणवादी सीला का पूर्वाभिनय कह सकते हैं। या तो आधुनिक कुषाण काल के उपरान्त भारतीय इतिहास में अथयुग आता है। इस काल में सतुलन और समभौते के लिए सब प्रकार के प्रयत्न किये गए। परन्तु समय का कसीटा पर पुरानी कपालक्याएँ सगी नहीं उतर सकी। इसलिए वर्णाश्रम धर्म पर आधारित समाज-व्यवस्था का दापरे में नई नई आस्थापिकाओं की सृष्टि अक्षय्यभावी थी। वैदिक गाथाओं और आचारों में इतना दम था कि वे बौद्ध धर्म से लोहा लेती यद्यपि विदेशी कुषाणों के विरुद्ध युक्तिपोषित राष्ट्रीयता ने काफी दूर तक ब्राह्मणवाद का भाग प्रदर्शित कर दिया। अथयुग का तमिशा को धीरकर मध्य भारत में भारतशिव नागा का उदय हुआ। वे अपने को शत्रिय कहते थे।^{१५४} वे प्राचीन काल के ६ दिव्य बसोदय थे, अथवा समय समय पर चलने

वाले नवक्षत्रिय, यह विवादास्पद विषय है। 'मजुधी मूलकल्प' में उहे वश्य कहा गया है। जायमवाल का कहना है कि भारशिवो के जमाने में बौद्ध धर्म के विरुद्ध शव धर्म ने सिर उठाया था। 'समाज की पुनर्व्यवस्था के लिए दोष शोधन के रूप में शैव सयास आवश्यक हो गया था सुधार के लिए शैवमन की नितान्त आवश्यकता थी।' ६१ जायसवाल का यह भी कहना है कि बौद्ध धर्मावलम्बी कुषाणो से लड़ने के लिए भारशिवो ने कई राज्यों को मिलाकर संध बद्ध किया। फर्जी राष्ट्रीयता के हिमायती भारशिवो के लिए इसके सिवा कोई चारा भी नहीं था। उन्होंने प्राचीन भारतीय परम्परा का उद्धार करा था, वैदिक आचार विचारों के एकमात्र ज्ञाता के रूप में पुरोहित वर्ग को पुनः प्रतिष्ठित करने का व्रत लिया था। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी उनके लिए यह आवश्यक था कि वे जाति एव रंग की समता, प्राचीन जातीय परम्पराओं की अवमानना तथा अन्तर्राष्ट्रीयता आदि, बौद्ध धर्म का सभी मायताओं का विरोध करते। इस प्रकार 'विष्णुपुराण' में वर्णित नागा न वटटरपथी ब्राह्मणवाद का नेतृत्व किया। लेकिन प्रश्न है, क्या नाग कौन थे? गुणदा महादेवी के नारायणपाल शिनालेखो एव अभिलेखविद श्री हीरालाल के अनुसंधानों से ज्ञात है कि समाज में वर्गों की सृष्टि करने वाले तत्त्व में परिवर्तन हो रहे थे। जन-समाज से नये-नये समुदाय निकलते थे और विभिन्न वर्गों में अपने व्यवसाय के अनुसार अपनी कोई जगह बना लेते थे। फिर जिस वर्ग में वे मिलते थे, उसका नाम भी धारण कर लेते थे। ६३ नागवंश भी वसा ही एक समुदाय था।

वाकातक ब्राह्मण वंश का उदय २८४ ई० से ३४२ ई० के बीच में हुआ। गौतमीपुत्र वाकातक ने भारगिव राजा भवनाग की कन्या से विवाह किया। गुप्तवंश के अन्त्येक के पूर्व इसी वाकातक वंश की शक्ति देश में सर्वप्रधान थी। भारशिवो की भाँति वाकातक वंश वाले भी शव मत्तावलम्बी थे। वे ब्राह्मणवाद तथा यज्ञ याग के अनुयायी थे। उही दिना दक्षिण में भी पल्लव वंश का शासन चल रहा था। इस प्रकार लगभग सम्पूर्ण भारत पर ब्राह्मणों का शासन पुनः स्थापित हो गया था। वर्णाश्रम धर्म का पुनरुत्थान भी स्वाभाविक ही था। इन ब्राह्मणवादी शासकों ने अनेक वैदिक यज्ञ भी किए। उनका कहना था कि ब्राह्मण धर्म में सुधार लाना उनका आवश्यक कर्तव्य है।

गुप्त युग (ई० पू० ३२०—ई० ५०० ई०)

गुप्तवंश का शासनकाल भारतीय इतिहास में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी युग में आधुनिक हिन्दू धर्म का स्वरूप निर्धारित हुआ। यह धर्म

पुरानी वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था के ढाँचे के अन्दर होनेवाले परिवर्तन और सगोपना का अन्तिम अध्याय था जिसमें निग्रहादि बौद्ध धर्म की अनेक प्रथाओं को प्रतिष्ठातिमूलक माना गया। वेदों को इस्वरकृत अथ स्वीकार किया और ब्राह्मणों को सब वर्णों में श्रेष्ठ बताया। पाप-कर्म और प्रायश्चित्त के प्रश्नों पर भी विचार होने लगा। इस तरह से ब्राह्मणवाद भारत का जातीय धर्म बन गया। उसके बाद से इस धर्म ने किसी भी अन्तर्जातीय प्रभाव को स्वीकार नहीं किया और क्रम-क्रम से भारतीयता का प्रतिरूप बन गया।

गुप्तवंश के कौन थे? उहाने कही भी अपने वर्ण का उल्लेख नहीं किया है। दूसरा कोई भी शासक वंश अपने वर्ण का उल्लेख करने से नहीं चूका है। जायसवाल लिखते हैं, उहाने कही भी अपनी उत्पत्ति या वर्ण का उल्लेख नहीं किया है। ऐसा जान पड़ता है उन्होंने जान बूझकर इन बातों पर पर्दा डाला है। ६४ 'कौमुदी' महोत्सव के आधार पर जायसवाल का मत है गुप्तवंश के कारस्कार नामक अछूत वर्ण के थे। कारस्कारों के सम्बन्ध में गुप्तवंश न लिखा है कि ब्राह्मणों को उनसे घबराना चाहिए। उनसे मिलकर जीव विरोध का सामना करना पड़ा। इससे दो कारण थे एक तो यह कि वह कारस्कार वर्ण का था दूसरे उसने बौद्ध मतावलम्बी लिच्छवी राजा की कन्या से विवाह किया था। यह विरोध तभी शांत हो सका जबकि गुप्तवंश वाला ने ब्राह्मणों की अपीनता पूर्णतः स्वीकार कर ली और भारतियों का कान्तका और पल्लवों की भाँति ही कट्टरपथी ब्राह्मणवाद का ध्वजावाही होना कबूल किया। इस प्रकार अज्ञात कुल गुप्तवंश वाले परम हिन्दू बन गए। जो ब्राह्मणों द्वारा तिरस्कृत कारस्कार थे, वे वर्णाश्रम धर्म और कट्टरपथी ब्राह्मणवाद के प्रचारक बन गए।

जसा कि हम ऊपर कह आए हैं वेदवादी बौद्ध धर्म को पराभूत करने में सफल रहा। यही कारण है कि भारतीय वाकान्तक काल में वेदवादी पीछे हटता गया और देवताओं के इतने नये मता का मृजन होने लगा। वेदिक हिन्दुत्व के स्थान पर पौराणिक हिन्दुत्व की प्रतिष्ठा हुई जोकि आज तक चल रहा है। यदि भारतियों के तो गुप्तवंश वाला वर्णव्यवस्था। उनके शासन काल में स्मृतियाँ विधान बन गईं। वर्णाश्रम धर्म एवं ब्राह्मणों की श्रेष्ठता में विश्वास रखना लोगों के लिए अत्यन्त आवश्यक हो गया। महाकाव्यों के नायक राम और कृष्ण ईश्वर के अवतार माने गए। वेदिक काल के जनजातीय

देवताओं के स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश की प्रभावशाली त्रिमूर्ति प्रतिष्ठित हुई। शक्तिशाली वदिक देवता इन्द्र स्वर्ग की नौकरगाही का प्रधान अधिकारी मात्र रह गया। जो इन्द्र पहले दानवों का सहार करता था, वही अब दानवों से बराबर हारता है। हारकर विष्णु की सहायता मागता है, और विष्णु की सहायता मिलने पर ही वह युद्ध में विजयी हो पाता है। सस्कृत साहित्य में भी ब्राह्मणों की महिमा सिद्ध करने के लिए अनेक उलट फेर किये गए, तभी एक पुराण में तो यहाँ तक लिखा हुआ है कि महर्षि भृगु एक बार क्षीर-समुद्र में गए। वहाँ सबशक्तिमान् विष्णु को सोते देखकर उन्होंने उनकी छाती में एक लात मारी। उस पाद प्रहार का चिह्न विष्णु की छाती पर उभर आया और विष्णु ने इसे अपना धर्म भाग समझा।^{६६} क्या इससे भी बढ़कर वगैरत अहम-यना का प्रचार हो सकता है ?

‘याज्ञवल्क्य संहिता’ के अलावा इस काल के अथ धर्मशास्त्रों में नारद, विष्णु और पराशर संहिताएँ भी हैं। विष्णु-संहिता तो निश्चय ही ‘मनुस्मृति’ और याज्ञवल्क्य संहिता’ के बाद लिखी गई, क्योंकि उसमें इन दोनों ग्रन्थों की बातें उधार ली गई हैं। उसमें लिखा है कि पीले वस्त्र वाले सन्यासियों और कापालिका का दर्शन अमंगलकारी होता है।^{६७} इनके अनुसार अन्त्यजों और म्लेच्छों से बातचीत करना भी पाप है।^{६८} इस संहिता में आर्यावत्त की परिभाषा इस प्रकार की है—‘जिन देश में चातुर्वर्ण-व्यवस्था नहीं है, उस ऋषि मुनि म्लेच्छों की भूमि कह। आर्यावत्त वैस देशों की सीमा से सबका दूर है।^{६९} इससे माफ पता चलता है कि जहाँ वर्णाश्रम धर्म नहीं है, वहाँ आर्यावत्त नहीं हो सकता। इस संहिता में विष्णु की पूजा की विधियाँ विधायित की हैं।

इसमें यह भी लिखा है कि “अगर गुप्त धन हाथ लगे, तो ब्राह्मण उसका स्वयं उपयोग कर सकता है।”^{७०} इस कथन से ‘विष्णु संहिता’ के ब्राह्मणों के प्रति पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण का पता लग जाता है। इतना ही नहीं, इसके अनुसार ब्राह्मणों को मृत्युदण्ड नहीं दिया जा सकता। और “राज निम्न-वर्ग के किसी व्यक्ति का वह धर्म पाट ले, जिसमें उम्र व्यक्ति ने अपने स श्रेष्ठ व्यक्ति पर आधात किया है।”^{७१} ७ उसी प्रकार अपराधी के वग के अनुसार ही उसको क्षमा या ब्यादा अथदण्ड देना चाहिए।

‘विष्णु संहिता’ में छुप्राङ्गल का सवाल भी स्पष्ट रूप से उठाया गया है। लिखा है ‘अङ्गल जाति का कोई व्यक्ति यदि जान-बूझकर तीनों उच्च जातियों

१ से किसी व्यक्ति को छू देता है तो उसे मृत्युण्ड मिलेगा। १ १ सम्पत्ति
 उत्तराधिकार के मामले में इस संहिता ने मानव धर्मशास्त्र का अनुसरण
 किया है। प्रतिलोम विवाह इस युग की विगणता थी। सभी प्रकार के
 सामाजिक सम्बन्ध केवल सजातीय लोगों के बीच ही हो सक्ते थे। १ २
 विष्णु संहिता की अपेक्षा परागर संहिता कुछ उत्तर है। फिर भी उस
 संहिता ने विष्णु संहिता का समर्थन किया है। उसमें गोमांस भक्षण को पाप
 बताया है और अंतरजातीय भोज से लागू को मना किया है। इस स्मृति के जमाने
 तक क्षत्रिय जाति ब्राह्मणवाद की प्रतिक्रिया से पूर्ण पराभूत हो गई थी। उनके
 हाथ का रोधा हुआ चावल ब्राह्मणों के लिए अग्रगण्य था। हाँ मनु के समय की
 अपेक्षा इस काल में वस्यो और शूद्रों की स्थिति कुछ अच्छी थी। परागर में
 लिखा है— वस्य या शूद्र को सबदा व्यापार कृषि या गृहोद्योग पर निर्भर
 रहना चाहिए। १ ३ यह आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि उन जितने आसिद्ध
 शूद्र जाति वाले गुप्तवंशीय राजाओं का ही तो शासन चल रहा था।
 नारद-स्मृति भारतीय इतिहास के मध्यकाल में लिखी गई। इसमें
 कमजोर और अयोग्य राजा का भी आदेश पालन करने का आग्रह किया गया
 है। १ ४ मनु ने पुष्यमित्र द्वारा राजहत्या को सजाई दी। नारद ने अयोग्य
 राजा का भी समर्थन किया। इन दोनों में किसी प्रकार का अंतरविरोध नहीं
 है। मनु के जमाने में ब्राह्मण अपने को सुरक्षित नहीं समझते थे। वे सोचते थे
 कि ब्राह्मण राज्यों का उन्मत्त सम्भव है। कुपाण वगैरे के उदय के रूप में एसा
 हुआ भी। किन्तु गुप्त काल में जबकि ब्राह्मणों ने क्षत्रियों तथा अन्य जातियों
 को पूरी तरह कुचल डाला था मानव धर्मशास्त्र का ऐतिहासिक कतब्य पूरा
 हो गया। इसलिए नारद ने निन्दित होकर मनुस्मृति से अलग अपना अभिमत
 दिया। ब्राह्मण इस काल में देवब्रह्म (अर्थात् ब्राह्मण देवता) कहलाते थे। अपने
 राजनीतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए उन्होंने सद्धान्तिक रूप से तो नहीं पर
 व्यवहारतः वेदों को तिलाजलि दे दी। ब्राह्मणवाद और बौद्धधर्म दोनों के
 निरन्तर सघर्ष से लोग ऊब गए थे और समझौता कर लेना चाहते थे। इसके
 बिना समाज या राज्य की स्थिरता असम्भव थी। बौद्ध धर्म ने महायान पथ का
 रूप धारण कर समझौते का हाथ बढ़ाया और ब्राह्मणवाद ने भी अहिंसा तथा
 अथर्व वेद सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया। इसलिए वेद विहित बलि प्रथा
 छोड़ दी गई। जसा कि नारद और परासर स्मृतियों से प्रकट है वस्यो और
 शूद्रों के प्रति भी उदारता खिललाई गई। इतना ही नहीं स्वयं बुद्ध का हा
 ब्राह्मणवादी हिन्दू धर्म में मिला लिया और उन्हें विष्णु का एक अवतार

माना गया। भगवद्गीता में लिखा है—“भैने गुण और कम वं अनुष्ठार चार धर्मों की मृष्टि की है।” < क्षत्रियो की शक्ति का पूणत नाश हो चुका था, इसलिए ब्राह्मणा न पहले के क्षत्रियो द्वारा प्रणीत उपनिषद्वा को स्वीकार करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। यही कारण है कि गीता में हम वेदान्त और सात्य के प्रभाव पाते हैं।

यह सामन्तवाद का जमाना था। वैदिककालीन यायावर युग कभी का समाप्त हो गया था। निजी सम्पत्ति का विक्रम हो चला था। औद्योगिकों के सप भी बन रहे थे। सजातीय विवाह भी शुरू हो रहा था। गुप्तकाल के पिछले दिनों में जन्म की बधता, वग की श्रेष्ठता, निम्न वग के लिए अधिकाधिक अयदण्ड की व्यवस्था, अन्तरजातीय विवाह पर प्रतिबध, भाँति भाँति की दासता, भू-स्वामित्व के आचार पर आभिजात्य की स्थापना सामन्तवादी भूमि व्यवस्था, राजा के दधी अधिकार तथा सामन्तवादी श्रेणी शृङ्खला आदि की विभिन्न प्रवृत्तियाँ प्रकट हो गयी थी। गौर्षों के कौन-से विशेषाधिकार थे, इसकी जानकारी उस जमाने में प्रचलित शिषार के नियमा से णत हा जाती है। घम राज्य का उल्लेख भी मिलता है। गीता में भी ऐसी बात लिखी हैं। इन सबसे प्रकट है कि गुप्तकाल तक भारतीय समाज की व्यवस्था सामन्तवादी हो चली थी। धार्थिक राजनैतिक आचार पर समाज में वग विभाजन होना था और सामन्तवादी श्रेणियाँ निर्धारित की जाती थी। यही कारण है कि उस काल में वर्णायम घम और आचार को ब्राह्मणवाद का अग मान लिया गया।

गुप्त वग का शासनकाल

यह भारत के एकीकरण का भी समय था। आर्यावर्न (उत्तर भारत) और दक्षिणापथ (दक्षिण भारत) के मिलन से भारतवष बना। 'भारत के इन दोनों अण्डा वं सांस्कृतिक एकीकरण का श्रेय ब्राह्मण-साम्राज्यवाद का है। आयागर ने लिखा है, 'उत्तर भारत में जिन णिनों बौद्ध घम का बोलबाला था, उही दिना दक्षिण भारत में ब्राह्मणवाद का प्रचार हो रहा था। यद्यपि अय दोन घमों की तुलना में इने कोई विशेष महत्त्व नहीं मिला फिर भी इसके प्रचार प्रसार में कोई कठिनाई नहीं हुई।”

बद्धनकाल एव तत्पश्चात्

बद्धनकाल (६०६ ई०—६४८ ई०) में बौद्ध घम को पुनः एक बार उठने का मौका मिला। बड़ा बल वाले वैश्य जाति के घ। हूणा के आक्रमण तथा आन्तरिक पडयत्रा के फलस्वरूप गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद यह वग उत्तर

भारत का सामक बनना । वश्य बहुत पन्ने कृषि कम को शून्य के हाथ में छोड़ कर व्यापारी बन गए थे । कारांतर म घनी वन्य परिवार ने उद्योग सधो पर अधिकार करना शारम्भ किया । उनम से बढन वग बाने राजमता तर हृयियाने म सफल हो गए । चीनी बौद्ध मानो हुणनसाग ने तिला है— 'सक मत्तात्मकता कइ पुता स कवल शक्तिमा के हाथ म रही । कभी-कभी विद्रोह और राजहत्याएँ तब हुई हैं और अय जातिया को भी भाग बढने का अवसर मिला है । ' ०

बढनों का राज्य स्थापित हान के बाद ही ब्राह्मण और बौद्धो का उत्र सधय शुरू हो गया । ब्राह्मणबानी शक्तिनयो पश्चिमी बगान न राजा गशाक के नेतत्व में सघटित हुए और हृषयबढन की छत्रछाया म सघटित बौद्ध शक्ति को विनष्ट करने के लिए उद्यत हो गए । जब तक गशाक जीवित रहा हृषयबढन की एक न घली । उसका मृत्यु के बाद ही हृषयबढन का साम्राज्य विस्तार पा सका । इन दोनो शासकों का मधय यस्तुत कटटरता और उदारता की लड़ाई था जिसम अन्तत उदारता की जीत हुई ।

बढन काल के बाद भारत क लिए पुन अघ युग आ रहा था । इस युग म सामन्तबानी सरलारा ने विरोधी सिद्धान्तो की आड म एक दूसरे म लडाइयाँ लढी । देश उपल-मुषल क गभ स बगाल म पालवश राजपुताना मे गुजर प्रतिहार वश और दक्षिण म राष्ट्रकूट वग उदित हुए ।

गुप्त वग क बाद जनता ने एक शूद्र का ही अपना राजा चुना । उसन ब्राह्मण नामन्ता का नाग कर दिया । ' ० उसके बाद पालवश के मस्थापक गोपाल का उदय हुआ । गोपाल को भी जनता न चुना था । पालवग के शासनकाल म बाह्य धम पुन लोकप्रिय और शक्तिशाली हो गया । जायसवाल लिखते हैं कि गोपाल का चुनाव इस बात का सातक है कि बगालिया ने बहुत पहल—आठवीं सदी म जातिगत श्रेष्ठता के बढिक मिदान म अपन का मुक्त कर लिया था । उस एव महान् राजनीतिक काय स उन लोगो ने मनु द्वारा निमित्त सस्याग्रा को समाप्त कर दिया । यह उन दिना म बहुत बडा बात था । एक शूद्र को राजा बना देने का अर्थ था कि युग-युग म पापित मानसिक गुलामी की कड़ियाँ तोड दी गई हैं । इस अवसर पर मुक्त-मन गौडवर्गीयो ने राह दिखलाई और शूद्रो ने भारत के इतिहास म एक उज्ज्वल अध्याय जाडा । ' १ पाला का उदय निम्न वग वाला के लिए महत्वपूर्ण था । उस वग का राज इतना जनप्रिय था कि आज भी बगाल की जनता महिपाल के गुण गाती है । बताया गया है कि बगाल म आज जो ताग अछूत कहनाते हैं,

वे उन पाल अफसरा और सैनिका के बाधर हैं, जिन्होंने ब्राह्मणवाद को कभी स्वीकार नहीं किया।

ब्राह्मणों का फिर से विजय प्राप्त करने का मौका ग्यारहवीं सदी के मध्य में मिला। पश्चिमी भारत के गुजर प्रतिहारों का दावा था कि वे क्षत्रिय हैं। किन्तु यह सन्देहग्रस्त है। दक्षिण में उन दिनों राष्ट्रकूटों का बोलबाला था। बंगाल के पालवंश में राष्ट्रकूट घराने की कन्याओं के विवाह हुए। राष्ट्रकूटों को ब्राह्मण चातुर्व्यास ने मार हटाया। उधर बंगाल में मेनवंश शक्तिशाली हो रहा था। सेना और चातुर्व्यास के गठबंधन के बाद पालवंश का राज्य खत्म हो गया। इस प्रकार ब्राह्मण पुनः शक्तिशाली हो गए और मुसलमानों के आक्रमण के समय वे ही हिंदुओं की शक्ति का सर्वप्रधान प्रतीक थे। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय राजपूतों के राज्य भी थे। किन्तु ये राजपूत मूल रूप से क्षत्रिय नहीं थे। उनका उदय या तो जनता के बीच से हुआ था, या वे विदेशी थे। इसलिए उन्होंने ब्राह्मणों का प्रभुत्व स्वीकार करना ही श्रेयस्कर समझा, अथवा उनका लिए सत्ता का उपभोग असम्भव था। "राजपूत राज्य विगुड फौजी साम्राज्यवाद था, जिसमें राजपूत शासकों और लोभी ब्राह्मण पुरोहिता ने गठबंधन करके जनता का खूब चूसा और अपने महला और मन्दिरों को अपार धन से भर लिया। सम्पूर्ण देश में घोंघे ही समय में बड़े-बड़े मन्दिर बन गए। उनके निर्माण में हजारों मजदूरों को, जो कि दास या कर्मी थे, अपना पड़ा और बगुमार धन खर्च हुआ। मन्दिरों के गभ-गह मोना चाँदी और अपार सम्पत्ति से भर लिये गए। पुरोहितों के भ्रष्टाचार की कोई सीमा नहीं थी। सपीत और बनाव-सजाव के वातावरण में सबका नतवियाँ मन्दिरों का मुस्करित करती रहती थीं। उधर राजागण भी अकल्पनीय धनधन और भ्रष्टता में लीन रहते थे। किसी का भी जनता की परवाह नहीं थी। मुसलमानों के हमले के समय भी, जबकि हमलावरों ने बड़े-बड़े गहरे और मन्दिरों का धन लूटना शुरू किया, हम धाम लागों की चाँदी बात सुनाई नहीं पड़ती। शासकगण धन और धैर्य के लिए आपस में ही लड़ते रह गए। ब्राह्मण भी अलग अपने मन्दिरों के मोहक वातावरण में तल्लीन थे। इतिहास में पात है कि मुसलमान शक्तिशाली मील की दूरी तय करते चले आते हैं, और राह में कोई उनका विरोध नहीं करता। अधिकारियों को कोई सूचना भी नहीं मिल पाती और आक्रमणकारी नगरों और मन्दिरों में प्रवेश कर जाते हैं। उसी प्रकार वे अपार सम्पत्ति लूटकर निर्विरोध सन्धी दूरी तय करके वापस भी लौट जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है उन दिनों देश में कोई शासन प्रबन्ध था ही नहीं।"

मुसलमानों का हमला (७१२ ई०—१२०० ई०)

मुसलमानों का पहला हमला गिन्ध म ७१२ ई० में हुआ। उस समय से हम हिन्दू समाज के विषय में मुसलमान यात्रियों का लला से ही जानकारी प्राप्त होती है। इब्न खुरदाद ६०० ई० के सप्त में अनुलोम विवाह, और ब्राह्मण वध (अर्थात् व ब्राह्मण जो अपनी ब्या का विवाह क्षत्रिय से नहीं करते थे, पर क्षत्रियों की ब्या को स्वयं चाह लेते थे) का बान मिलता है। शूद्रों के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि शूद्र वे लोग थे जो पैसे से किमान थे। ग्यारहवा सती में भलवन्नी नामक दूसरा मुसलमान यात्री भारत आया। उसने लिखा है कि राजपूतों (क्षत्रियों) का स्थान ब्राह्मणों से बहुत नीचे नहीं था। परन्तु उसने यह भी लिखा है कि इब्न खुरदाद जैसे अरब यात्रियों ने राजपूतों को जिस अवस्था में पाया था उसमें वे कुछ नीचे गिर गए हैं। काणे का कहना है कि बाद में चलकर ब्राह्मणों का 'म्लच्छ' शब्द के अन्तर्गत अरब, तुरु और सब-से-सब मुसलमान आ गए।

बिना दिनों मुसलमान भारत के पश्चिमी हिस्सों में लूटमार कर रहे थे उन्ही दिनों पूर्वी भाग में बड़ा ही व्यापक परिवर्तन हो रहा था। ब्राह्मणवादी प्रतिप्रिया पहले तो गान्धिपुत्र प्रसार के लिए और बाद में विजय के लिए, अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। सेनवा के नेतृत्व में ब्राह्मणों ने बंगाल में बौद्ध मतावलम्बी पालवंश को हरा लिया था। पश्चिमी पञ्जाब के कम्ला की भाँति ब्राह्मणों के अनेक उपनिषद् पूर्वी हिस्सा में बस रहे थे। ब्राह्मण शासन काल में बौद्ध धर्म का परित्याग और वर्णाश्रम धर्म का अंगीकार करने के सिवा लोपा के लिए कोई चारा नहीं था। यह उन्के लिए जीवन रथा का प्रश्न था। बंगाल में बौद्धों का इतना निमग्न दमन हुआ कि उनका कोई चिह्न तक नहीं बचा। बौद्ध लोकनायिका और लोकोक्तिों तक को ब्राह्मणपरक रूप दे दिया गया।^{१११} ब्राह्मणों ने एक नया प्रचार गुरु किया कि कलिभुग में चार नहा, केवल दो वष बच हैं—ब्राह्मण और शूद्र। इसका ताप्य है कि जब धनियाँ और बरसों की राजशक्ति छिन गई है तो वे शूद्र बना लिए गए। यह बात भी ब्राह्मणों ने किसी पुराण या लोकोक्ति की व्याख्या के रूप में कह डाली है। लेकिन जिस धर्मग्रन्थ में यह लिखा है, पता नहीं चलता। वय ने लिखा है 'उपयुक्त सिद्धान्त का मूल सूत्र हमें कहीं नहीं मिलता। बनारस के कमलाकर भट्ट ने अपने ग्रन्थ 'शूद्र कमलाकर' में अवश्य इस ग्रन्थ का एक वाक्य उद्धृत किया है। परन्तु कमलाकर भट्ट का स्वयं इसकी सचाई

का विश्वास नहीं था, क्योंकि उसने भी 'किमी पुराण म लिख' है—इस तरह का हवाला दिया है। परन्तु किस पुराण में यह बात आई है? प्रतीत होता है कि यह वाक्य कल्पनाप्रसन्न है। इसको जवन पंडित ने जेवन उद्धृत किया है। यह स्वयं उसका लिया नहीं हो सकता। ११२

यद्यपि के मतानुसार यह सिद्धान्त १३०० ई० से १६०० ई० के बीच किसी समय प्रतिपादित किया गया। यह मुसलमानों के आक्रमण के समय की सामाजिक स्थिति का द्योतक है। जहाँ कहीं भी क्षत्रिय और वैश्यों ने राज्य-शक्ति सौ दी थी, उनका पूरा दमन हो गया। बंगाल में यह दमन पन्द्रहवीं सदी में रघुनन्दन के समय में शुरु हुआ। वहाँ के ब्रह्मणा के सम्बन्ध में पंडित हरप्रसाद शास्त्री के मत से हम परिचित हैं। किसी-न किसी प्रकार की उन्नत प्लेट अदृश्यम्भावी थी। 'पालवश' के राजाशा के द्वारा प्रचारित महायान पथ पर चलने वाली बौद्ध जनता के उच्च वर्ग के लोग तार्किक पथ के ब्राह्मणवादी बन गए। बाकी साधारण लोग बौद्ध जन तथा अथ लाग थी चैतय के वैष्णव पथी ब्राह्मणवादी हो गए। ११३ मुसलमानों के आगमन के पूर्व सभी हिन्दू समान थे। किन्तु आगति वातावरण से लाम उठाकर ब्राह्मणगण हिन्दू समाज में सबप्रमुख बन गए। जो लोग समाज-व्यवस्था के प्रति असन्तुष्ट थे, उनमें से अनेक न इस्लाम धर्म का अंगीकार किया। मुसलमानों से पराजित होने के बाद शक्तिहीन क्षत्रिय शासकों के लिए ब्राह्मणवादी समाज-व्यवस्था स्वीकार कर लेने के सिवा दूसरा चारा नहीं था। पंडित हरप्रसाद शास्त्री लिखते हैं—

मुसलमान सभी भारतीयों का—व हिन्दू या बौद्ध—हिन्दू या भारतीय कहते थे। इसमें लाम उठाने में ब्राह्मण नहीं चूके। उन्होंने ऐसा दिखलाया, मानो बौद्ध थे ही नहीं। वे इस प्रकार भारतीय अथवा हिन्दू जनसमुदाय में सबप्रमुख बन बैठे। असह्य बौद्ध विना मातिक के देवद जस हा चल। यज्ञयानिया महजिया, नायपथिया और कालचक्रयानिया ने कुछ दिना तज अना अस्तित्व अलग कायम रसा लेकिन कालान्तर में उनके अनेक अनुयायी या ता ब्राह्मणा से मिल गए, या मुसलमान हो गए। किन्तु ब्राह्मणा ने अपने तज दापर में बसे ही लाग को लिया, निहाने पूणत उनके पीछे-पीछे चलना स्वीकार किया। ऐस लोगो को उन्होंने (ब्राह्मणा ने) 'भवगात्ता' कहा। जिन लागो ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखन का प्रयत्न किया वे समाज में बहिष्कृत कर दिए गए। उनको अनाचारणीय जाति' अथवा दलित वर्ग कहा गया। ११४ हिन्दू समाज ने गवा, कुपाणा और हूणा का पचा लिया था, किन्तु मुसलमानों का नही पचा सका। इस्लाम केवल एक विदेशी धर्म ही नही था बल्कि

उम्की एक सम्मना भी थी, जो भारताय मन्मता की हर रूप में प्रतिद्वन्दी थी। इस्लाम की परम्पराएँ भारतीय परम्पराओं के बिलकुल विपरीत थीं। हिन्दुओं का पवित्रतामूलक कट्टरवादिता इस्लामी अन्तर्राष्ट्रीयता के मुकाबले में टिक नहीं सकी। ऐसी दशा में हिन्दू धर्म को आत्मरक्षा के राष्ट्रीयता का सहारा लेना पड़ा। दूसरा कोई रास्ता भी न था। मुसलमानों के साथ किसी प्रकार का भी सम्पर्क अज्ञित हो गया। जातीय राष्ट्रीयता के नाम पर राजपूताने में राज्य स्थापित किए गए। दक्षिण में विजयनगर का राज्य कायम हुआ। किन्तु ऐक्य के अभाव में उन्हें मजबूती नहीं मिली। हिन्दुओं के विभाग में बहिष्कार और बजना की मनोवृत्ति बड़ी उभर रही थी। सभी प्रकार के बाह्य सम्पर्क को अज्ञित कर दिया गया था। यहाँ तक कि पूरा समाज पथरा गया। गौतम का कोई चिह्न नहीं रहा। हिन्दू समाज का यही अन्तिम रूप था जो आज भी कायम है। उस समय से हिन्दू जनता की मनोवृत्ति उस पराजित जाति-जैसी है जो हमें आत्मरक्षा के लिए और बाह्य प्रभाव से बचने के लिए चिन्तित रहती है।

दसवीं सदी के बाद से हिन्दू समाज के विभिन्न वर्ग पथरा-पथरा पर जाति बन गए। उनमें (मातृजातीय विवाह का सिद्धान्त कायम हुआ। फिर जातियों के अन्तर्गत भी पारस्परिक अलगाव आने लगा। इस प्रकार पश्चिमी बंगाल के कामरूप विहार या उत्तर प्रदेश के कायस्थों से वैवाहिक सम्बन्ध नहीं करते। दसस्य ब्राह्मण का विवाह काकणी ब्राह्मण परिवार में नहीं होता। इस प्रक्रिया का परिणाम यह निकला कि वर्णों के स्थान पर जाति उपजातियों की शृंखला बन गई। विषय का सिद्धान्त मान्य रह गया। व्यवहार में जातियों प्रचलित हुई। इससे बाद सृष्टि तथा राजनीतिक-आामाजिक प्रभावों के आधार पर प्रांतीय विभेद उठ खड़े हुए। जन्म और वर्ण की पवित्रता को विनाश महत्व दिया जाने लगा। मुस्लिम बहुमत वाले इलाकों में रहने वाले हिन्दुओं पर लागू सन्देह करने लगे। उनके वर्ण और आचार विचार के प्रति घृणा व्यक्त की गई।

बौद्ध धर्म के पराभव और राजसत्ता पर मुसलमानों के अधिकार के बाद तो ब्राह्मणवाद की ही विजय थी। मुसलमानों से पराजित हो जाने पर हिन्दू राजाओं की मर्यादा बहुत घट गई। लेकिन हिन्दुओं का नाश राजसत्ता के नये स्वामी मुसलमानों के हाथ में जाने के बजाय पूज्य ब्राह्मणों के हाथ में जाता गया। ११५

जसा कि पहले भी हम देख चुके हैं, ब्राह्मणवाद के पुनरुत्थान का पहला

चिह्न था, नये घमशास्त्रा पुराणा और दूसरे धार्मिक साहित्य का प्राचीन ऋषि मुनियो द्वारा लिखित बताकर उनको प्रचारित करना। शायद ही कोई सस्कृत रचना है, जिसमें ब्राह्मणो ने कोई फेर-बदल नहीं किया है। यह उनके लिए काफ़ी आसान भी था, क्योंकि सस्कृत हमारा से कुछ चुने चुनाए लोगो की भाषा थी। इस प्रकार से सस्कृत ग्रन्थो के साथ इतना स्वेच्छाचार हुआ है कि उनकी ऐतिहासिकता में अविश्वास करना साधारण सी बात हो गया है। रमेशचन्द्र दत्त लिखते हैं, 'पुराण, जो कि आज तक प्रचलित है विक्रमादित्य और गिलादित्य के समय में लिखे गए, किन्तु बाद की सन्धियों में यहाँ तक कि मुसलमानों की भारत विजय के बाद भी उनमें अत्यधिक परिवर्तन और परिवर्द्धन किया गया है। यही कारण है कि हमें पुराणों में विभिन्न सम्प्रदायों व भगवत् का उल्लेख मिलता है। प्रत्येक सम्प्रदाय में असंख्य आधुनिक हिंदू देवनाम्नाओं से चुने हुए अपने विशेष देवता की श्रेष्ठता सिद्ध करने की चेष्टा की है। बाद में हिंदू लेखकों ने अपनी रचनाओं को प्राचीनता और मान्यता का चाणू पढ़ाने के लिए प्राचीन नाम से लिखना शुरू किया। इस प्रकार आज के अठारहवाँ पुराण वेद-यास द्वारा प्रणीत बतलाये जाते हैं।' ११६

इस युग में ब्राह्मणवाद का क्या रूप था यह जानने के लिए हमें जरा इस काल के शास्त्रों के आदेशों पर भी विचार करें—(१) जाति विभेद का मानने पर बहुत जोर दिया गया है। ये विभेद पहले की अपेक्षा अत्यधिक बढे और क्रूर हो गए हैं। (२) अन्तरजातीय विवाह और भोज तथा अन्य प्रकार के अन्तरजातीय सम्पर्क वर्जित किये गए हैं। (३) नाना प्रकार के उपजागो उद्योग-धंधों में लगे हुए लोगों को जैसे सुनार, लाहार, घोषी, बुनकर बढई और बनिया आदि को नीची जाति का बताकर उनसे घृणा की जाती है, (४) विभिन्न जातियों के बीच छुआछूत का भेद बरतने पर जोर डालते हैं, (५) कुछ जातियों को अपवित्र करार दिया जाता है, फिर उन्हें म्लेच्छ या चाण्डाल कहकर उनका बहिष्कार किया जाता है। (६) मुसलमानों, ईसाइयों, चानिया, जापानिया तथा दूसरे सम्य लोगों को अपवित्र कहकर उनका अपमान किया जाता है। कहा जाता है कि उनके सम्पर्क से घावभी अगुद्ध हो जाएगा। (७) न केवल अपराध के हेतु मिलने वाला दंड ही, बल्कि परिश्रम का प्रतिशान भी जाति भेद के आधार पर नियमित होता है। ब्राह्मण द्वारा चुराया गया धन दूसरे जन्म में काम आता है। शूद्र को दिया गया धन नरक में ले जाता है। (८) समुद्र-यात्रा वर्जित है। यह पाप करने वालों को जाति-बहिष्कार का दण्ड मिलता है या बड़ा ही अपमानजनक प्रायश्चित्त करना

पत्ता है, (६) ऋष्ट-म घृष्ट रूप में भी मूर्तिपूजा का प्रोत्साहित किया जाता है, (१०) मन्त्रों और उनके भास पास की भूमि को दिव्य स्थल बनाकर कहा जाता है कि वहाँ जाने में ईश्वर प्रसन्न होते हैं।^{११०}

इतना ही नहीं और भी अनेक मूलतापुण नियम और ग्रन्थ धारणाएँ गाम्त्रों द्वारा घोषित और प्रसारित की गईं। यथा, 'साँसा ब्रह्महत्या के लिए मिलने वाला दण्ड है। इसकी दवा यही है कि चार तोले सोने का कमल बनवाइये, फिर मन्त्राच्चार के साथ हाथ करके उसे किसी धर्मात्मा ब्राह्मण को दान कर दीजिए।'^{१११} जाति के आधार पर ही अपराधों की दवाएँ तय करने का नियम था। जैसे, ब्राह्मण के लिए इस प्रकार का नियम था— उसे तराजू पर तोला जाए फिर कुछ धार्मिक विधियाँ पूरी करनी के बाद उसे फिर से तोला जाए। यदि वह पहली ताल में हल्का हो जाता है तो उसका कथन सत्य माना जाएगा। यदि वह पहले से भारी हो जाता है, या उतना भारी ही रहता है, तो वह झूठा माना जाएगा।^{११२} वय के लिए— वह पूर्वाभिमुख होकर नाभि-पर्यन्त जल में प्रवेश करे। फिर पास ही सडा एक दूसरा भादमी १०६ अंगुल चौड़ाई वाले घनुष से सरकटे का बाण जिनका नोक पर सोह का फल लगा हुआ है चलाये। बाण छोड़ते समय जल में खड़ा व्यक्ति टुटकी लगाये। नदी के उस पार एक और भादमी, बाण को वापस लाने के लिए दौड़े। यदि टुटकी लगाने वाला भादमी बाण को छोड़ जाने और वापस लाने तक पानी के भातर ही डूबा रह जाता है, तो उस निरपराध समझना चाहिए।^{११३} शूद्र के लिए— उसका इस प्रकार से उहर दिया जाए—विष को उसने परिमाण से ३० गुणा अधिक घी में मिला दिया जाए और मन्त्र पढ़कर अभियुक्त को खिलाया जाए। अभियुक्त दक्षिणाभिमुख रहे और विष देने वाले का मुख पूर्व या उत्तर का धार। तत्पश्चात् अंगकण ५०० बार ताली बजाएँ। इस बीच विष खाने वाले को कुछ नहीं खाता तो वह दापमुक्त समझा जाएगा और उस विष का अक्षर दूर करने वाला दवा दी जाएगी।^{११४} ये सब वपन धार्मिक ग्नेडविन द्वारा धन के लिए 'आर्द्धत अक्षरों में हैं। इस प्रकार की प्रथाएँ अक्षरों के जमाने में प्रचलित थीं।

अपने नये आत्मों के आधार पर ब्राह्मण ने अपने को भूय (पृथ्वी पर) के देवता) और नूपति (पृथ्वी का स्वामी) कहा। उनका दावा था कि राजा और प्रजा, दोनों उनकी पूजा करें। उन्होंने जमीन पर अपने देवों के अधिकार का दावा किया। माताधार में तो यह सजमाय सिद्धांत बन गया कि जमीन का

स्वामित्व केवल ब्राह्मणों के हाथ में रहेगा। दूसरे लोग उनमें ही जमीन बन्दोबस्त लेंगे।

जाति-व्यवस्था में मन्दिर का विशिष्ट स्थान था। वह आज भी है। पुरोहिता और मन्दिरों के कारण जन समाज के बहुसंख्यक लोगों के अधिकार छिन गए। मन्दिर वास्तव में केवल धार्मिक संस्था नहीं था। इसके कई प्रकार के उपयोग थे। यह गांव के प्रशासन का केन्द्र था तथा जाति-व्यवस्था के नियमों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के रूप में प्रतिष्ठित था। वहाँ जिन लोगों को जैसे अधिकार प्राप्त थे उसके आधार पर ही उन लोगों की जाति और श्रेणी निर्धारित की जाती थी। ब्राह्मणों को ही इष्ट देवता तक जान और मूर्ति की पूजा करने का हक था। उनके बाद जैसे लोग वहाँ स्थान था, जो मन्दिर के अन्तरंग के प्रवेश-द्वार पर खड़े हो सकते थे। उन्हें भीतर जाने का अधिकार नहीं था। तीसरी श्रेणी में वे लोग थे, जिन्हें केवल मन्दिर के अहाते में जाने दिया जाता था। उन्हें मन्दिर के मुख्य भवन में जाने की अनुमति नहीं थी। चौथी श्रेणी अशुद्धता की थी, जिन्हें मन्दिर से निश्चित दूरी पर रहने का आदेश था। कुछ अशुद्धता को तो मन्दिर वाली गली से भी गुजरने की इजाजत नहीं थी।

मन्दिर में जाति-सम्बन्धी भगडा की सुनवाई भी होती थी। दैवी तरीका से अभियुक्त की जाच की जाती थी, और अपराधी को जुर्माना किया जाता था। वहाँ चुनाव भी होना था। यानी वहाँ जातीय जीवन के सभी महत्वपूर्ण काम होते थे। गांव की पाठशाला भी वहीं चलती थी। "बड़े-बड़े गहरों में तो मन्दिर सरकारी खजाने का भी काम देता था।" १२२ इस प्रकार मन्दिर का पुजारी राजस्व पर नियंत्रण भी रखता था। इसलिए ब्राह्मणों के हेतु मन्दिर की मौकरी सबसे लाभदायक थी। किन्तु राजाघना न कुछ दूसरे ही मतलब से मन्दिर का समर्थन किया। राज्य को मन्दिर से काफी आमदनी होती थी। उनके जरिये जनता से भी पैसे वसूल जाते थे। 'मूर्ति-पूजा का जन-समाज पर कोई उन्नायक प्रभाव या भी नहीं पड़ता था। पर भारत में तो इसके साथ धर्म और मर्यादियों जुड़ी हुई थी। मनु के काल तक धर्म तथा साधारण जन अपने अपने तरीके से अपने इष्ट देव की उपासना कर सकते थे और पर में ही पूजा एक अर्घ्य निवेदन करते थे। किन्तु जब पूजा का स्थान घर से हटकर मन्दिर में था गया तो मन्दिर के अभिभावक के रूप में पुरोहित धर्मवा पुजा रियों का भी अस्तर लोगों के दिमाग पर निश्चित रूप से पड़न लगा। उन्होंने लोगों के गलत में गुलामी का एक और तौक डाल दिया। ब्राह्मणपूजा

उत्सवों तथा विपुल सजावट के कारण जनता पर उसका बेहद प्रभाव पड़ा और अनेकानेक अर्थ धारणाओं की सृष्टि हुई। काव्य कलाकीर्ण मूर्तिकला वास्तुकला एवं संगीत से भी इस काम में सहायता मिली। इस प्रकार कुछ ही सदियों में राष्ट्रीय धर्म का अधिकांश मंदिरों की शानदार इमारतों और उत्सवों पर उलौंचा गया। यह सब जनता की अनेक श्रद्धा एवं विश्वास की बाह्य अभिव्यक्ति थी।

पहले तीर्थ-यात्रा का नाम भी लोग अच्छी तरह नहीं जानते थे किन्तु अर्थ बढ़े पमान पर तीर्थयात्रा का आयोजन किया गया। मंदिरों को जमीन और धर्म दान में मिले। इस तरह से धर्म का अर्थ हो गया देव मूर्तियों और उनके पुरोहितों की अर्थ भक्ति। भारत के बड़े-बड़े शहरों में कितने ही मन्दिर बने हैं अनेक नई मूर्तियाँ और अनेक नये देवता मंदिरों और अर्थ भक्तों के हृदय में स्थापित हो गए।^{१२३} ऐसे ही धर्म धरते ब्राह्मण जाति हिन्दू समाज में सबसे ज्यादा प्रभावशाली हो गई। सामाजिक राजनीतिक सस्था के रूप में मन्दिरों का नियंत्रण समाज पर पूर्ण रूप से स्थापित हो गया और समाज के बहुसंख्यक लोगों की इच्छा आकांक्षाओं को बरहमी में कुचल दिया गया। तभी से ब्राह्मणों की छत्र-दाया में उनकी कृपा प्राप्ति के लिए आगे बढ़ने की प्रतियोगिता और साम्प्रदायिक सवीणता शुरू हुई।

हम देखते हैं कि हिन्दू समाज का इतिहास जनजातीय सस्थाओं से शुरू हुआ और मुसलमानों के शासन काल में उसमें स्थान भेद के साथ सामाजिक भेदभाव भी उठ खड़ा हुआ। समाज का जीवन अनेक स्वतंत्र जातियाँ उपजातियों में बँट गया। यह विभाजन खड़ी सीध और पड़ी सीध दोनों रूप में जातीय स्तर में उत्पन्न। यह विभाजन खड़ी सीध और पड़ी सीध दोनों रूप में सामाजिक एवं सिलसिलेदार एव लिगायत आन्दोलन के रूप में इस व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह भी हुए किन्तु सामान्यतः कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ। विद्रोहों को राजनीतिक अर्थदायी विद्रोह रूप में कुचल भी दिया गया।

ब्रिटिश काल

ब्रिटिश शासन काल में ब्राह्मणवाद का नाम और भी मजबूत हो गया।^{१२४} ईशिया कम्पनी एवं व्यापारी मत्वा थी। उसका एकमात्र उद्देश्य मुनाफा करना था। उसके लिए भारत एक जमीन-रही जाता था जिसका प्रबंध कम्पनी के नाभोदारों के हित की दृष्टि से करता था। उसकी दिलचस्पी सालाना

कम्पनी की रकम म थी, न कि 'याथपूण शासन-व्यवस्था के सिद्धांत और नीतियां म । इसलिए म्बभावत कम्पनी ने देश के प्रमुख लोग का विश्वास प्राप्त करने की कोशिश की । वसे लोग म मुख्यत ब्राह्मण ही थे । कम्पनी को मुसलमाना का भरोसा नहीं था, क्योंकि उसने उनके हाथ स ही सत्ता छोनी थी । एवं डुब्बाय म १८१६ ई० मे इस प्रकार लिखा है— ब्राह्मणा ने भी भारत के सम्प्रति 'किन'गली यूरोपीय शासकों की कृपा प्राप्त करने म बनी होगिपारी दिखलाई है । उह विभिन्न सरकारी सत्याग्रा, दफतरो और जिला के 'यामालया म उच्चतम पद प्राप्त हैं जहाँ उह पम भी सबसे ज्यादा मिलते हैं । दरअसल, सावजनिक शासन प्रबंध का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहाँ वे अनिवाय न हो गए हा ।' १२५

सम्पन्न मंदिरों के प्रबंध मे कम्पनी के मुलाजिमा और ब्राह्मणा के बीच घनिष्ठ सहयोग था । हम पहले देख चुके हैं कि मुसलमाना क 'गामनवाल के प्रारम्भ से ही ये मंदिर किस प्रकार ब्राह्मणवाद और इसलिए जातिवाद क प्रतीक हो चले थे । विदेशी मुसलमान शासकों के अधीन रहकर मना क लिए बग-सघष चलाना सम्भव नहीं था । इसी कारण मन्दिरवाद का प्राधिपत्य हुआ । मुसलमान शासकों ने भी बापिक आय क विचार से मंदिरों का समर्थन किया । ईस्ट इण्डिया कम्पनी न भी ऐसा ही किया । यदि इस आमदनी का भरोसा नहीं रहता तो म मंदिर कब क न गिरा दिए गए होते । सन् १८०३ ई० म पुरी क जगन्नाथ मंदिर मे कम्पनी को १,३५,००० रुपये की आमदनी हुई । यात्रा कर से बीच गया मे भी दो-तीन लाख रुपये आये । तिरुपति काशीपुर, सरकार और सम्बल आदि तीर्थस्थाना स लगभग ११,३४,००० रुपये वसूल गए । इस नीति से ब्राह्मणवाद का मघष्ट बल मिला । १२६ उस युग क घनेक सुधारवादी आ-दीतन अमफल हा गए क्योंकि ब्राह्मणों को राज्य का वत प्राप्त था । सरकार न अन्ध मन्दिरों का जाणोंद्वार किया और बड़ी-बड़ी धनराशि अनुदान म दी । मद्रास प्रेसीडेन्सी को ८,७६७८० रुपये का वार्षिक अनुदान मिला, बम्बई प्रेसीडेन्सी के २६,५८६ मंदिरों और मूर्तिया का ६,६४५६३ रुपये मिये । कम्पनी की पूरी जागीरदारी म मूर्ति-यूजा पर १७ (१५५८६) रुपय प्रतिवष मच किए जाते थे ।

इसका एक ही अवश्यम्भायी परिणाम था । इससे जाति-व्यवस्था को अघोष यत प्राप्त हुआ और जाति-व्यवस्था के आधार पर ही ब्राह्मणों का सामाजिक और धार्मिक प्रभुत्व स्थिर हुआ था । कम्पनी का भी हिन्दू जाति का समर्थन करने स जाति-व्यवस्था के रूप म एक सुनीक्षण अस्थ प्राप्त था, क्योंकि हिन्दुध्मा

म जाति बहिष्कार मृत्यु-दण्ड स भी अधिक भयप्रदा था । सन् १७६७ ई० मे कम्पनी ने जातीय कचहरियाँ स्थापित की और इन कचहरियाँ को हिन्दुओं के सामाजिक और पारिवारिक जीवन में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया । हिन्दू लोग जातीय कचहरियों से भ्रतमन्त भ्रातकित रहते थे क्योंकि उनके विपरीत निणय का अर्थ था सामाजिक मृत्यु । बक ने वारेन हेस्टिंग्स के विरुद्ध अपने सुप्रसिद्ध आरोपों को उपस्थित करने के प्रसंग में इन जातीय कचहरियों का भी उल्लेख किया है । उसने कहा उसने अपने नौकर को धार्मिक अधिकार क्षेत्र के सर्वोच्च पद पर ला विठाया है । इस अधिकार क्षेत्र में सभी जातियों के सुख-दुःख, पारिवारिक और सामाजिक मान प्रतिष्ठा तथा परलोक के मुक्ति पत्र से सम्बन्धित सभी प्रश्न आ जाते हैं । १२८ यासाधीशा और बकीलो को ब्राह्मणवादी नियम की जानकारी कराने के लिए वारेन हेस्टिंग्स ने ब्राह्मण विद्वानों की मदद से संहिताओं का आघार पर उन नियमों को एक संहिता प्रस्तुत कराई और उसका अर्थज्ञान में अनुवाद कर लिया गया । जाति को सुस्पष्ट धार्मिक और राजनतिक महत्त्व प्रदान किया गया । जन-दोलन के कारण आगे चलकर विभिन्न जातियाँ में सरकारी संरक्षण का विभाजन कर दिया गया तथा स्कूला-कालजा में, चुनावों में तथा वैधानिक सुधारों में विभिन्न जातियाँ के अधिकारों और मतों को भी स्थान मिलने लगा ।

जाति-व्यवस्था को मिटाने में समाज-सुधारक-गण तबथा असमर्थ रहे । जाति क्या है विभिन्न सामाजिक समूहों की स्थिति और अधिकार क्या हैं इन बातों का निणय करने का अधिकार सरकार ने अपने हाथों में ले लिया । हस्तक्षेप न करने की सरकारी नीति का वास्तविक अर्थ था यथास्थितित्व का समर्थन । यह ठीक है कि ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के धार्मिक और सामाजिक जीवन में दखलबाजी करना छोड़ दिया । शायद अब इसकी जरूरत भी नहीं थी । सम्पूर्ण देश में ब्राह्मणवाद की जड़ जम गई थी । दक्षिण भारत में तो इसका प्रभाव पहल ही से था । ब्राह्मणवादी समाज-व्यवस्था अर्थात् जाति-व्यवस्था का स्वीकार कर लेने के बाद सभी सम्प्रदायों को तरह-तरह की सहूलियतें और आजाती मिल जाती थीं । हिन्दू धर्म के वर्तमान नेताओं ने हिन्दू धर्म की समुच्चय वृत्ति का प्रस्ताव किया है । डा० सक्सेना राधाकृष्णन् का मत है कि 'हिन्दू धर्म किसी प्रजातीय सत्त्व पर आधारित नहीं है । यह विचार और भावाधारों का पित्रायत उत्तराधिकार है, जिसमें भारत में रहने वाली सभी प्रजातियों ने योगदान दिया है वर्तमान हिन्दू धर्म के बहुत-से संस्थापक आदिनाल से प्राप्त हैं । वेदा में वर्णों का धर्म

संश्लेषित है। परन्तु जन-समाज अपने परम्परागत देवताओं, यज्ञों और नागों की उपासना करता रहा। बौद्धिक कट्टरवादिता तथा प्रतीकवाद की श्रोत में अनेकानेक विश्वासों धार्मिक सम्प्रदायों तथा आदिम प्रजातीय तत्त्वों का व्यापक प्रचार था। बौद्धिक धर्म में उन तमाम आदिम युगीन धार्मिक सम्प्रदायों के तत्त्वों संनिहित हैं। उन तत्त्वों को नष्ट करने के बदले बौद्धिक धर्म ने उन्हें ग्रहण कर लिया। बौद्धिक धर्म में द्राविडों तथा भारत के अन्य आदिम निवासियों के सामाजिक जीवन का इतना कुछ तत्त्व मिला गया है कि आज मौलिक अर्थ तत्त्वों को विलग करना कठिन है। सब-कुछ इतना सख्त सख्त और विरन्तन हो गया है कि उनके आधार पर एक विशिष्ट हिन्दू सम्प्रदाय विकसित हो गई है जिसमें न तो हम अर्थ सम्प्रदाय कह सकते हैं न द्राविड सम्प्रदाय और न आदिवासी सम्प्रदाय। चिरकाल से एकता का स्वप्न हमारे नेतागण देखते रहे हैं और उस स्वप्न की छाया सम्पूर्ण परिपाठ पर मँडरानी रही है। इस्लाम और ईसाई धर्म ने समय-समय पर हिन्दू धर्म में युयुत्सु प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करने की चेष्टा की है फिर भी हिन्दू धर्म की मौलिक प्रवृत्ति समन्वय और सहिष्णुता की है। इस उदार दृष्टिकोण के कारण हिन्दू धर्म सभी प्रकार की धार्मिक आकांक्षों और चेष्टाओं का वण-पटल बन गया है। १२६

हिन्दू धर्म का यह मर्मधर्म आतिमूलक है। इतिहास इसकी पुष्टि नहीं करता। आदिम धारणाओं की स्वीकृति सहिष्णुता और उदारता का लक्षण नहीं है, यह दुर्बलता का लक्षण है। प्रत्येक युग की अपनी विचार-सम्पदा होती है जो पहले युग की विचार-सम्पदा का स्थान ग्रहण कर लेती है। आदिम कालीन धारणाओं से चिपके रहने के कारण चतुर्दिक अंध-पतन का सिल-सिला शुरु हो जाता है। यह सोचना भ्रम है कि उन सबमें कुछ सत्य है। उसी तरह यह कहना भी गलत है कि हिन्दू धर्म में कोई रूढ़ि नहीं। हिन्दू जीवन में ऐसी एक भी बात नहीं जो रूढ़ियाँ वा रीति-रिवाजों से नियंत्रित नहीं होंगी। हिन्दुओं में इस्लाम और ईसाई धर्म के पगम्बरों की पूजा स्वीकार की है। यह उदारतावर्ण नहीं बल्कि कमजोरी के कारण। इतिहास बतलाना है कि हिन्दू धर्म ने सभी भी विभिन्न समूहों और सम्प्रदायों को आतिमूलक एक साथ रहने की प्रेरणा नहीं दी। हिन्दू धर्म ने इस उद्देश्य से इन समूहों और सम्प्रदायों को स्वीकार नहीं किया। इन धर्मों के दायरे में तरह-तरह के दल और धार्मिक सम्प्रदाय यदि आत्मित हो गए हैं तो इनका कारण है प्रजातीय स्थान-परिवर्तन युद्ध और व्यवस्था में इन प्रकार

की उत्तारता का सबका अभाव है। यदि इसमें सबमुच उत्तारता होता तो न तो कभी सूद्रा का दमन होता न धुम्राङ्गन की बात उठनी और न जन्म व आधार पर जाति-व्यवस्था बन पाती। उसी प्रकार स्मृतियाँ भी बरिक् घम का बल्लपन करने वाले सूद्रों के लिए प्राण-दण्ड का विधान नहीं करती ?' ११

हिन्दू घम को पुरोहित वर्ग ने कायम कर रखा है। इसलिए न तो धार्मिक-भौतिक विषयों पर यथाशक्ती दृष्टि से विचार करने की पद्धति बन पाई और न उस प्रकार की समाज-व्यवस्था बन सकी। जिस वर्ग ने नक्षत्रों मृत व्यक्तियों भून प्रेतों तथा इस तरह की अनेकानेक धार्मिक व आधार पर अपनी सत्ता कायम रखी, उसने अपनी स्वायत्त रक्षा के निमित्त ही ऐसी अंध धारणाओं का परिपोषण किया।

जिस समाज में उत्पादक वर्ग पुरोहित वर्ग का प्रभुत्व समाप्त करने में असमर्थ रहता है उस समाज में किसी प्रकार का नया विचार बरिक् नहीं हो पाता। पुरोहिता का प्रभाव मिटने पर ही विज्ञान और दान का विकास होता है। यूरोप में बहुत ज़िना तक रोमन साम्राज्य व कारण ईसाई धर्म का बोलबाला रहा। अरब में व्यवसायिक और सैनिक व धर्म्युद्ध के कारण इस्लाम धर्म उठ खड़ा हुआ। भारत में भी ब्राह्मण वर्गों ने ही बौद्ध धर्म जसा सावर्देशिक धर्म प्रचारित किया। यह ठाक है कि जब मानव-समाज बरिक् युग की देहली पारकर बाहर आया तब पुरोहिता व वर्ग ने प्रगतिशील भूमिका अदा की। परन्तु उसके बाद से यह वर्ग सबका प्रगति का पथ अवरुद्ध करता रहा। भारत के इतिहास में यह बात पूणतया सिद्ध हो जाती है। सामाजिक परिपादक दशन और आन्वेलन व अभाव में हिन्दू धर्म तथा इसकी विचित्र सामाजिक संस्थाओं का इतना उलभा रूप बन गया है।

जस-जसे जाति-व्यवस्था की जड़ जमती गई है वसे-वसे हिन्दू समाज में निम्न श्रेणी के लोग जाति के विषय में सचेष्ट होते गए हैं और ब्राह्मणवर्गीय नियमों को मानकर हिन्दू समाज में प्रवृत्त पान या उपर उठने का प्रयास किया है। चूकि ऊँची जाति व लोग ब्राह्मणवर्गीय नियमों का पालन करते हैं इसलिए छोटी जाति के लोग भी इनका पालन उचित समझते हैं।' १२

इसलिए जो जाति सामाजिक सोपान पर ऊँचे उठना चाहती है वह उठनी ही मुस्तदों से धार्मिक बटटरता का पालन करती है।

भारत के भारत में हम यह प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि जिन जातियों में कभी ब्राह्मण पुरोहित नहीं थे, व जातियों ने अपने ब्राह्मण पुरोहित नियुक्त कर रखी हैं और ब्राह्मण बटटरवादिता से सम्बन्धित सभी त्योहारों गोश्रा और

प्रवरा को अंगीकार कर रही हैं। आदिवासियों में भी जा हिन्दू होना चाहते हैं वे अपने सामाजिक नियमों का ता कायम रखते हैं किन्तु अपने सम्बन्ध मूलक चिह्न को छोड़ रहे हैं और उनके स्थान पर हिन्दू देवताओं को स्वीकार कर रहे हैं। शुरू में वे किसी धार्मिक सुधार आन्दोलन के रूप में पिछले दरवाजे से हिन्दू समाज में प्रवेश करते हैं। आगे चलकर आर्थिक स्थिति के अनुरूप अपनी एक अलग जाति बना लेते हैं। तपस्वियों के आह्वानों को खूब दान-दक्षिणा देने हैं जो उनकी जाति के लिए धर्मग्रन्थों के आधार पर अच्छी-खासी प्राचीन मूलोत्पत्ति दूढ़ निकालते हैं। हिन्दू समाज में आज इसी प्रकार का विकास हो रहा है।¹¹⁹³² जाति-व्यवस्था के विरुद्ध कभी कोई आन्दोलन नहीं चला। इसके-दुक्के व्यक्तियों और समूहों ने निश्चय ही आवाज उठाई है, परन्तु कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ मन्दा है।

इस प्रकार नास्तिकता सामाजिक वर्गों की चाहामिभ्यक्ति है। इस सधप के विषय में एंगेल्स ने लिखा है "इतिहास की गतिगालना के नियम जिसके अनुसार राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक या आर्थिकमूलक सभी ऐतिहासिक सधप चला करते हैं, वस्तुतः विभिन्न सामाजिक वर्गों के सधप की अभिव्यक्ति हैं।"¹¹⁹³³

हिन्दू धर्म और दर्शन

किसी भी सामाजिक सस्या को अच्छी तरह समझने के लिए उससे दास्य
 आधार की जानकारी आवश्यक होती है। जानि-ब्यवस्था को भी सही ढर्रणों
 समझने के लिए हिन्दू धर्म और दशन का विश्लेषण उपयोगी प्रतीत होता है
 हिन्दू धर्म की ठीक-ठीक परिभाषा देना कठिन है, क्योंकि इस विषय पर नित
 ही परस्पर विरोधी मत मिलते हैं। फिर भी एक सबसे सामान्य दृष्टिकोण है कि
 हिन्दू धर्म समाज व्यवस्था के स्थायित्व की रक्षा करने वाली विधियों की एक
 सहिता है। यही कारण है कि इस धर्म में चानुवर्ण्य व्यवस्था जैसे सिद्धांतों को
 प्राथमिक महत्त्व दिया जाता है। कुछ विचारक इस प्रकार के तर्कों का विस्तार
 करते हुए कहते हैं कि ईश्वर की कल्पना तथा परलोक पुनर्जन्म देवता आदि
 की धारणा मूलतः प्रतीकात्मक है और इनकी धवतारणा इसलिए हुई है कि
 जन साधारण विधियों और सामाजिक नियमों का पालन करें। दूसरे विचारक
 ऐसे भी हैं जिनका विश्वास है कि हिन्दू धर्म इहलोक और परलोक में सुख
 शान्ति प्राप्त करने का माग वतलाता है। श्रुति स्मृति और पुराण चारों पुरुषार्थ
 और चारों वर्णों के सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं और वतलाते हैं कि अपने
 वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है।
 एक तीसरा भी मत है कि हिन्दू धर्म शत प्रतिशत आध्यात्मिक धर्म है।
 शव धष्णव और वेदान्ती सभी इस मत की पुष्टि करते हैं। उनका कहना है
 कि जीव मोक्ष माग का तीथयात्री है। उसने लिए यह भौतिक जीवन एक
 पडाव मात्र है। आत्म रक्षा समाज रक्षा धन तष्णा आदि तमाम बातें निरयक
 मायाजाल हैं।
 ये सब मत विवादास्पद हैं। हिन्दू धर्म से सामाजिक स्थायित्व और सुव्यवस्था
 को बल मिला यह बात भी मानने योग्य नहीं। इस अर्थ में हिन्दुओं ने धर्म
 को कभी स्वीकार भी नहीं किया। कुछेक धर्मवादों को छोड़कर हिन्दू धर्म के
 भी आचार्यों ने हमेशा परस्पर विरोधी विचारों का प्रचार किया। इसका
 प्राण वदिक विधियों में आत्मा ब्रह्म मुक्ति और अमरत्व-सम्बन्धी उपनिषदों

की परिकल्पनाओं में, स्मृतियों के वर्णाश्रम धर्म में, पुराणों की प्रायश्चा, तीर्थयात्रा तथा अथ धार्मिक नियमों में बड़ी आसानी से मिल जायेगा। वेदा में धर्म का सबसे भौतिकवादी रूप मिलता है। उनमें भौतिक सुख के लिए शक्ति के लिए, धर्म के लिए, सुन्दर स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए प्रायश्चाएँ मिलती हैं। उपास्यदेव भी भौतिक शक्तियों के प्रतीकमात्र है। ठीक इसके विपरीत वेदांत का धर्म मूलतः आत्मात्मिक है।

भौतिक पदार्थों का महत्त्व स्वीकार करनेवाला धर्म, पिछड़े हुए सामाजिक संगठन का सूचक होता है। जैसे धर्म को स्वीकार करनेवाले लोग विश्वास करते हैं कि मनुष्य के दैनिक जीवन-व्यापार में भी देवताओं का हाथ रहता है और उन देवताओं की प्रसन्नता से अभीष्ट फल की प्राप्ति हाँसवती है। अथवा उनके क्रोध से जीवन विपद-सकुल और कष्टकर हो जाता है। वस्तुतः इस प्रकार का विश्वास भौतिक घटनाओं के काय कारण भेद को न जानने से ही उत्पन्न होता है। ऐसे अज्ञान धूमिल व्यक्ति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हैं सबसे असमर्थ रहते हैं। हिंदू धर्म के अधिकांश ग्रंथ ऐसे ही लोगों ने लिखे हैं जिन्हें देवी शक्तियाँ में अंधविश्वास या अथवा जिन्हें समाज का प्रभावशाली वर्गों से प्रेरणा मिलती थी। वैदिक धर्म का प्रभाव क्षीण होने पर विभिन्न प्रकार के मत प्रतिपादित किये गए, जिनमें उपनिषदों का प्रभाव विशेष रूप से कान्ति-कारी सिद्ध हुआ। यही कारण है कि अनेक लोग हिंदू धर्म को सबसे आध्यात्मिक मानते हैं। इन सब परस्पर विरोधी विचारों से भारतीय समाज का धर्म पतन हुआ। वेद, पुराण और स्मृतियों ने भारतवासियों को धर्मशास्त्र का अंधविश्वासग्रस्त उपामक बना दिया। उन लोगों ने पूरे आस्था के साथ वर्णाश्रम धर्म को स्वीकार किया और ऐसा मानने लगे कि कोई भी व्यक्ति उच्च श्रेणी का हो या निम्न श्रेणी का, यदि वह अपने धर्म का पालन करता हो तो निश्चय ही मुक्ति-लाभ करेगा। भारतीय दर्शन ने भी बड़ी सफाई से दुनिया के कठोर सत्य पर अध्यात्म की चादर डाल दी है। इसी साक्षर आधार पर मायावाद का वितण्डा खड़ा किया गया, जिसकी शोच म लालो-करोडा दैन्य-शीलिन भारतीय जनता का अभ्युक्ति केहरा छिप गया। यह ससार माया है हम आज जो पुत्र हैं और जिस दशा में हैं, वह सब हमारे पूर्व-जन्म के कर्मों का फल है, और उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की सम्भावना नहीं। इसलिए उसे बदलने की चेष्टा ही क्योंकर की जाए? कर्मों न अपने को भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाए? पुनश्च, जब भू-शैव आत्माओं द्वारा प्रतिपादित कर्मों का पालन करते हुए योग प्राप्त किया जा सकता है तब फिर इहलोक को स्थिति में परिवर्तन साने की

आवश्यकता ही क्या ?

हिन्दू धर्म में नाना प्रकार के धार्मिक रूपा और परस्पर विरोधा प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण है। इसका दो महत्वपूर्ण पहलू हैं। एक तो यह कि सामाजिक जीवन में तरह-तरह की प्रथाएँ और नियम हैं दूसरे तरह-तरह के असंगतिपूर्ण परस्पर विरोधी अध्यात्मवाणी सम्प्रदाय चालू हैं। प्रत्येक धर्म में मूल में कोई न-कोई समाज व्यवस्था होती है। हिन्दू धर्म का यह पट्टन बिलकुल स्पष्ट है जैसे—चानुवन्त्य जानि-व्यवस्था विवाह-सम्बन्धी विधियाँ, पारिवारिक या जाति जीवन के मानदण्ड तथा सयुक्त परिवार प्रणाली आदि आदि। इस प्रकार हिन्दू धर्म एक विविष्ट सामाजिक संगठन में सम्बन्धित विधि विधानों का प्रतिरूप है। हज़ारा वर्षों से लोग मानते आ रहे हैं कि यह धर्म जाति-व्यवस्था पर आधारित है। जो हिन्दू अपनी जाति के नियमों का पालन करता है वही वास्तव में हिन्दू है। सभी धर्म-ग्रन्थों में समाज-व्यवस्था की हिमायत में पुनर्जन्म और कर्मवाद के सिद्धान्त का उपयोग किया है। हिन्दुत्व का धार्मिक पक्ष सामाजिक प्रथाओं और नियमों को केवल भौतिक महत्त्व ही नहीं देता बल्कि उनका आध्यात्मिक मूल्य भी बतलाता है। इस तरह से सभी सामाजिक नियमों का कोई-न-कोई धार्मिक अभिप्राय बतलाया गया है।

सभी सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनों का एक दार्शनिक आधार रहता है। दार्शनिक विज्ञानपरक भी हो सकता है और धर्मपरक भी। यह सब सामाजिक चिन्ता धारा पर निर्भर करता है। प्राचीन-काल के सामाजिक आन्दोलनों पर धर्म का विशेष प्रभाव रहता था। धर्म भी कितने प्रकार के थे—स्वाभाविक प्रवृत्तियों का बहुदेववाद एकेस्वरवाद ईश्वरीय सत्तावाद अथवा शकावाद। उन धर्मों में सामाजिक आधिक्य और राजनीतिक विवादात्मक भाष्यमय ही सम्भव था जोकि आधुनिक काल में सम्भव नहीं दीखता। शोचनीय बात है कि आज का जोकि आधुनिक भारत भारतीय नहीं जानते कि सामाजिक और राजनीतिक उदय या पतन पर विज्ञान और दर्शन का कितना असर रहता है। सामाजिक गतिशीलता जब तक स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हो जाती तब तक दर्शन हवा में किले जसा लगता है। यह यहाँ रतने की बात है कि क्रांति का प्रभाव मानव जीवन के सभी अंगों पर पड़ता है। आजकल की सामाजिक क्रांतियाँ हमारे अध्यात्मिक और नैतिक जीवन को प्रभावित करती हैं। परन्तु प्राचीन काल में मनुष्य के मन पर धार्मिक और आधिदैविक विश्वासों का सर्वाधिक प्रभाव रहता था। उन दिनों लोग विश्वास पर ही जीते थे। स्वभावतः वैसे जमाने में लोग के धार्मिक विश्वासा विचारों और सत्याओं में परिवर्तन लाने के लिए

धार्मिक आन्दोलन के रूप में ही क्रांति का सूत्रपात होना था, अर्थात् दुनिया के सभी धर्म महान् क्रांतियाँ के पारचायक हैं। बौद्ध धर्म एक प्रकार की महान् क्रांति थी। इसी प्रकार ईसाई और इस्लाम धर्म भी। इन सभी क्रांतियों के मूल में प्रारम्भिक प्रकृति-पूजा और पुरोहिता के विरुद्ध विद्रोह की भावना थी।

वर्तमान युग का ब्राह्मणवाद एक प्रकार की प्रारम्भिक प्रकृति-पूजा थी, जिसके विरुद्ध लगातार विद्रोह होते रहे। उनमें बौद्ध और जैन धर्म प्रमुख हैं। इसलिए प्राचीन भारतीय समाज की धार्मिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण आवश्यक प्रतीत होता है। धार्मिक विश्वासों और रुढ़ियों का स्वरूप स्थिर होते होते पूरा युग बीत जाता है, जिसमें हम सामाजिक परिवर्तन का काल कह सकते हैं। भौतिक और सामाजिक जीवन में क्रमशः परिवर्तन होते रहते हैं और तदनुसार लोगों के धारणों में भी परिवर्तन होते हैं। यदि कोई धार्मिक विश्वास खण्डित हो गया तो इसका अर्थ है कि जिस सामाजिक व्यवस्था की नींव पर वह विश्वास टिका हुआ था वह व्यवस्था ही विघटित हो गई। मनुष्य का जैसा-कुछ धारणा सम्बन्ध रहता है, वैसा ही कुछ सम्बन्ध मनुष्य और ईश्वर के बीच अथवा मनुष्य और देवताओं के बीच स्थापित हो जाता है। वेदा की प्रकृति-पूजा दरप्रसल तरह-तरह की प्राकृतिक गिनतियों की उपासना है। एकेश्वरवाद के द्वािभूत राजसत्ता से मिलता जुलता है। आदिम प्रजातंत्र में ही तरह-तरह के देवी-देवताओं की पूजा सम्भव थी। वे देवी-देवता वस्तुतः शक्तिशाली, प्रादुर्भाव व्यक्तियों के समान थे। उसके बाद जिस प्रकार जन-जातीय स्वतन्त्रता के भंगवाणों पर राजतंत्र की इमारत खड़ी होती है, उसी प्रकार प्रकृति पूजा और बहुदेववाद के पदचात् एकेश्वरवाद का उदय हाता है। इन सब बाना की सामाजिक आवश्यकताओं की रोगनी में ही समझना चाहिए। धर्म के स्वरूप में क्रमिक विकास हुआ करता है, जस बहुदेववाद के बाद एकेश्वरवाद। यह सब सामाजिक सन्नान्ति के परिणाम हैं। प्रगतिशील शक्तियों के अनुरूप ही क्रांतियाँ होती हैं। बहुदेववाद का सवया अन्त हो जाने पर एकेश्वरवाद की स्थापना हुई, जिसके फलस्वरूप तमाम सामाजिक सम्बन्धों में क्रांतिकारी परिवर्तन होन लग। पुराने और नये जमाने के बीच एक प्रकार का समझौता हुआ, और उसके नतीजे में लोगों में बहुदेववाद को छोड़कर सवगणितसम्पन्न एक ईश्वर की उपासना शुरू की। इसका अर्थ है कि सामाजिक सगठन पूरा-पूरा मिट नहीं सया था प्रगतिशील शक्तियाँ इतनी पुष्ट नहीं हो पाई थी कि वे प्राचीन गणित व्यवस्था को उखाड़ देंगी।

प्राचीन भारत में लोग बहुधा समझौते का रास्ता अपनाते थे। वेदान्त

के एकेश्वरवाद ने बौद्ध विश्वासों का सबका जमूलन नहीं किया, बल्कि उपनिषद् ने प्रादिमकाल के बहुदेववाद का एक प्रकार से शुक्ति पोषित रूप दूढ़ निवाला। इस तरह का समझौता क्योंकि हुआ—यह जानने के लिए सामाजिक वर्गों के आपसी सम्बन्ध का विश्लेषण करना चाहिए। किसी नये षग ने एकेश्वरवाद को प्रचारित नहीं किया था। एकेश्वरवादी दृष्टिकोण प्राचीन परम्परा से सबका भुक्त नहीं था। यही कारण है कि बहुदेववादी ब्राह्मणों ने रहस्यो-मुख्य एकेश्वरवाद का ईश्वरीय सर्वसत्तावात् का रूप दे डाला। और इसीलिए भारत में सामाजिक और राजनीतिक एकता स्थापित नहीं हो सकी और न केन्द्रीभूत राजसत्ता का विकास हुआ। विचारणाय बात है कि क्रान्तिकारी बौद्ध धर्म के भड के नीचे बड़े-बड़े साम्राज्यों का उदय हुआ परन्तु वे ज्यादा दिनों तक नहीं टिक सके। सामाजिक एकता के अभाव में केन्द्रीभूत सत्ता वाले राज्य छिन्न भिन्न हो गए। यहाँ न तो पृथक् एकेश्वरवादी धर्म का विस्तार हुआ और न सामाजिक और राजनीतिक एकता स्थापित हुई।^१

इतिहास क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के सघर्ष की कहानी है। भारतीय इतिहास में बौद्ध जन और लिगायत धर्म के द्वारा क्रान्तियाँ हुई। इन सब धर्मों ने बौद्ध धर्म और बौद्ध समाज का विरोध किया। इन्होंने समाज से ब्राह्मणों का अधिपत्य मिटाने की चेष्टा की और उच्च वर्ग के विरुद्ध जन साधारण के अधिकारों का नारा बुलन्द किया।

बुद्ध ने समाजगत विरोधों की परीक्षा की। उन्होंने देखा कि वेदों के पुरोहितवात् के कारण समाज में अक्षय दुःख है। ब्राह्मण पुरोहित जनता का आर्थिक और सामाजिक ग्रापण करते हैं विद्या पर ब्राह्मण वर्ग का एकाधिकार है, वेद विहित यज्ञादि कृत्या का चारा भार बोलबाला है जनता का काम फल में अयोग्य विश्वास है लोग पेड़ और पत्थर को देवता रूप में पूजते हैं। जसा कि एम० एन० राय ने लिखा है इतिहास के विभिन्न युगों में तरह-तरह से अतिरिक्त सामाजिक अधिकार (सोशल सर्विलन्स) नबिन होने रहते हैं। प्राचीन काल में बसा ही एक राग्ना था देवताओं के प्रति नवेद्यादि अर्पित करने का। और ये नवेद्यादि किस प्रकार अर्पित किये जाएँ यह पुरोहित ही बतला सकता था। इसीलिए हम कह सकते हैं कि ब्राह्मण ही उस जमाने के बकर थे। वे न केवल देवताओं के दलाल थे बल्कि समय समय पर देवताओं के प्रति अर्पित किये गए नवेद्या के रूप में अतिरिक्त सामाजिक अधिकारों के सत्पाक भी थे। देवता के दलालों के लिए यह बड़ ही मुनाफ़े का साधन था। वे जनता से

ख्यादा-से-ख्यादा बसूल लिया करते थे। आज एक देवता क्रुद्ध है तो इसको प्रसन्न करने के लिए एक नहीं बल्कि तीन-तीन बकरियाँ भ्रयवा दूसरी कोई चीज चढ़ानी चाहिए। इस प्रकार इतना कुछ चढ़ावा चढ़ता था कि पुरोहित एकवारगी हजम नहीं कर सकता था। बचा हुआ चढ़ावा उसकी निजी सम्पत्ति हो जाती थी। इस तरह से धीरे धीरे सारा सामाजिक धन ब्राह्मणों के एकाधिकार में चला गया और वे समाज के शासक बन गए।^२ इस बर्दिक ब्राह्मणवाद के विरुद्ध बौद्ध धर्म ने विद्रोह का राख फूका। इसकी ध्वनि को जन-भावधारण ने बड़े चाव में सुना। बौद्ध धर्म न केवल परम्परागत ही धर्म का विरोधी था, बल्कि सस्कार-जजरित जातिवद्ध समाज-व्यवस्था के विरुद्ध घोर प्रतिरोध का भी मूचक था। लगभग हजार वर्षों तक इस धर्म में ब्राह्मणवाद का मुकाबला किया, लेकिन अंत में जीत ब्राह्मणवाद की हुई। बौद्ध धर्म की पराजय का एक कारण यह भी था कि वह धर्म उतना एकेश्वरवादी नहीं था, जितना कि नकारात्मक। अपने अन्तिस दिना में तो वह धर्म मठवाद के दलदल में बुरी तरह फँस गया था और जिस भ्रष्टाचार के विरुद्ध विद्रोह के रूप में उदित हुआ था उसी भ्रष्टाचार से स्वयं आक्रान्त हो गया था।^३ ब्राह्मणवादी प्रतिक्रिया के नायक शकराचार्य ने अन्त में बौद्ध धर्म का श्राद्ध कर डाला। शकराचार्य के महत्वाकांक्षापूर्ण एकेश्वरवाद के बल पर प्रतिक्रियावादी हिन्दू धर्म ने बौद्ध धर्म का उमूलन तो कर दिया, परन्तु अपनी जड़ जमाने के लिए समाज में अनान और अंधविश्वास को खूब प्रभय दिया।

हिंदू धर्म-तंत्र चाहे बौद्ध युग के पहने का हो भ्रयवा शकराचार्य के जमाने का, उस पर एकाधिकार ब्राह्मणों का ही रहा। जनता के लिए वस्तुतः पतनामूल पौराणिक अंधविश्वास और जाति तथा छुआछूत सम्बन्धी सामाजिक पूर्वाग्रहों के सिवा दूसरा कोई धर्म नहीं बच रहा था। उन अंधविश्वास और सामाजिक रूढ़ियों का बटटरपथी ब्राह्मण जाति बड़ी मुस्तदी से प्रचारित और प्रोत्साहित करती थी।^४

ध्यापारी बग की कमजोरी के कारण बौद्ध धर्म में पुनर्निर्माण की अपेक्षा विघटन की शक्ति ही अधिक सक्रिय थी। यह ठीक है कि बौद्ध धर्म के विद्रोह से बर्दिक समाज की बुनियाद हिल गई और ब्राह्मणवादी व्यवस्था विघटित हुई। परन्तु साथ ही तत्कालीन गिधिल समाज व्यवस्था में विघटनकारी प्रवृत्तियों को भी बिना बल मिल गया। बौद्ध धर्म के सगुण पद से प्रेरित होकर नया समाज बनाने की अपेक्षा अधिकांश लोग उससे नकारात्मक रूप से ही प्रभावित हुए गए और नव निर्माण के बटिन पथ से पराट्मूल होकर निर्माण

को सोज में लग गए। अतः बौद्ध समाज अपनी अन्तरिण बलह से जजर हो गया और प्रतिक्रियावादी ब्राह्मणवाद के दुषप आक्रमण से अपनी रण नहीं कर सका।

बौद्ध धर्म को पराजित करने अपनी सत्ता पुनर्स्थापित करने के लिए ब्राह्मणों ने शंकराचार्य के नेतृत्व में तमाम दार्शनिक विन्तनों को जोकि उपनिषदों में समाविष्ट हैं, छाड़ दिया और वेदा की ओर लौट बने। बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवाद का मधप इतना दुषप था कि सारा समाज उससे अस्तव्यस्त हो गया और साधारणजन अधिदविक गिनियों की उपासना करने लगे। महाभूमि में लय होने की अपेक्षा यह लोक परलोक भयवा किसी दूसरे जन्म में ही सुख पाने की आशा कहा ज्यादा आकर्षक थी। इसलिए लोगो को ब्राह्मणवाद अधिक भान लगा। ब्राह्मणों का नारा भी था 'देवताओं का पूजन करो, वे तुम्हारे इस जन्म के सभी कष्टों का मोचन करेंगे और यदि तुमने धर्म का पथ नहीं त्यागा तो वे तुम्हें अगले जन्म में यथोचित पारितोषिक भी देंगे। यहाँ धर्म से तात्पर्य है मनुस्मृति जैसे धर्म शास्त्रों में वर्णित सामाजिक नियम। इस प्रकार अतोगमा पुनर्जन्म, कर्म और माना सम्बन्धी शंकराचार्य के सिद्धांत में सभी प्रगतिशील गिनियों का नाश कर डाला। इन सबमें कर्मवाद का सिद्धांत सबसे प्रबल पुरावृत्त (मिथ) साबित हुआ है। कर्मवाद तथा उससे ही सलग्न भाष्यवाद तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत में हिन्दुओं का धार्मिक दृष्टिकोण तथा मानव-जीवन सम्बन्धी उनकी समस्त व्याख्या समाविष्ट है। श्री अक्षराय निखत हैं 'इस सिद्धांत (कर्मवाद) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने अक्षेत्रों और कर्मों का भीष्ठा-बडका फल चणना पडता है। एक ही जन्म की अवनि में वाय-वारण भेद का पता नहीं चल सकता। कर्मवाद का ही दूसरा पहलू है पुनर्जन्म का सिद्धांत। फिर भी भारतीय रहस्यवाद (म्पिरिबुअलियम) का चरम लक्ष्य है निष्काम कर्म अर्थात् फल पान की चिन्ता किए बिना कर्म करत जाना।

परन्तु कोई चाह अथवा न चाह जब उसके कर्मों का फल उसको मिलन ही वाला है तब भना वह फल की चिन्ता किए बिना किस प्रकार अपना कर्म करता जाएगा। वस्तुतः कर्मवाद और निष्काम कर्म का पारस्परिक विरोध स्वतःप इन्द्रा (श्री बिन) और भाष्यवाद के आंतरिक विरोध का सूचक है। भारतीय अधिदविक चिन्तन का दूसरा आदेश यह है कि कर्मों की शुद्धता का एक दुष् अवत माना जाए और तब उसमें मुक्त होने की चेष्टा की जाए। यह आदेश बहुत ही अधिवारपूर्ण दण्डों में गीता में प्रतिपादित है— 'म विधी